ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्, ॐ खम् ब्रह्म ॥

स्वामी शरण कृत

ओम् साधना

ॐ साधना, वैदिक आध्यात्मिक चिकित्सा,

वैदिक योग साधना एवम् योग चिकित्सा

(मन्त्र साधना, वैदिक संस्कृति, हिन्दुत्व परिचय)

प्रकाशक

पालीवाल प्रकाशन

पालीवाल भवन, 117/एच-1/02, पाण्डु नगर,

जे. के. मन्दिर के सामने, कानपुर - 208005

ईमेल -paliwalprakashanvedicsahitya@gmail.com

वेबसाइट - vedayan.simplesite.com

मो. 9839105629, 8687849004, 7985402016

संस्करण : प्रथम, मकर संक्रान्ति, 2072 वि., 5117 युगाब्द,

(ई. 2016)

सर्वाधिकार : स्वामी शरण

मूल्य : दो सौ रुपये

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्, ॐ खम् ब्रह्म ॥

पुस्तक : ओम् साधना
लेखक : स्वामी शरण
सर्वाधिकार : लेखकाधीन
संस्करण : प्रथम, 2016 ई.
(प्रथम, मकर संक्रान्ति, 2072 वि., 5117 युगाब्द)
मूल्य : रु. 200/–
प्रकाशक : पालीवाल प्रकाशन
मुद्रक : पालीवाल प्रकाशन
पालीवाल भवन, 117/एच-1/02, पाण्डु नगर,
जे. के. मन्दिर के सामने, कानपुर - 208005
ईमेल :
paliwalprakashanvedicsahitya@gmail.com
वेबसाइट - vedayan.simplesite.com
मो. 9839105629, 8687849004, 7985402016

VEDAYAN
BY SWAMI SHARAN
मूल्य : दो सौ रुपये

ॐ

स्वामी शरण कृत

ओम् साधना

ॐ साधना, वैदिक आध्यात्मिक चिकित्सा, वैदिक योग साधना एवम् योग चिकित्सा

विषय सूची

1. ओम् साधना	05
2. वेदार्थ सोपान	13
3. अध्यात्म चिकित्सा	17
4. वेद मन्त्र साधना	21
5. वैदिक विज्ञान	30
6. वैदिक योग साधना	45
7. वैदिक चिन्तन	70
8. वैदिक आचार	80
9. वैदिक धर्म प्रवाह	108
10. वैदिक संस्कृति : सार संक्षेप	111
11. ॐ स्तुति	118

ॐ

निवेदन

ओम् साधना, मन्त्र साधना, मन्त्र शक्ति प्रयोग, मन्त्र चिकित्सा, योग साधना तथा योग चिकित्सा के साथ ही वैदिक संस्कृति के प्रमुख तत्वों का सरल संक्षिप्त परिचय इस पुस्तक में दिया जा रहा है। अधिकांश सामग्री लेखों तथा लघु पुस्तकों के रूप में भी प्रकाशित की जा चुकी है। इस पुस्तक में इससे सम्बन्धित कुछ अन्य लेखों का भी संकलन किया गया है।

वेद तथा संस्कृत भाषा को सरल एवम् जन साधारण के लिए बोधगम्य बनाने के हमारे इस प्रयास में डॉ. उमेश पालीवाल जी ने स्थान तथा सुविधा उपलब्ध करायी तथा समय-समय पर पर्याप्त आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया। डॉ. कृष्णदत्त जी ने भी कठिन समय में महत्वपूर्ण सहयोग देकर हमारा मनोबल बनाये रखने का कार्य किया हैं। गौरव श्रीवास्तव जी इस अभियान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। लेखन-सम्पादन के साथ ही वेद-पाठ तथा प्रवचन-व्याख्यान कार्य में वे हमारे अन्यतम सहयोगी बने हुए हैं। पंकज राठौर जी लम्बे समय से इस अभियान से जुड़े हुए हैं। उनका सेवा तथा सहयोग भाव हमारे लिए अत्यन्त मूल्यवान् है। लेखन सम्पादन कार्य में उनकी योग्यता का लाभ भी इस पवित्र कार्य में हम सबको मिलेगा, ऐसी हमारी आशा-अपेक्षा है। अम्बिका प्रसाद वेदव्यास जी वेदपीठ की स्थापना तथा संचालन का दायित्व निर्वाह कर रहे हैं। अमित गुप्त जी का योगदान भी अविस्मरणीय है। इन सभी सहयोगियों को हमारे समस्त लेखन-सम्पादन कार्य के प्रकाशन का दायित्व तथा अधिकार भविष्य में मेरे न रहने पर भी रहेगा। उनके माध्यम से हमारा सम्पूर्ण साहित्य भविष्य में उपलब्ध होता रहेगा, उनसे हमारी इतनी अपेक्षा तो है ही।

पुस्तकों के प्रकाशन तथा प्रचार-प्रसार का दायित्व तथा अधिकार सभी सहयोगियों को समान रूप से है। यथासम्भव मिलकर कार्य करना उत्तम है, आवश्यक प्रतीत हो तो सभी सहयोगी स्वतन्त्र रूप से भी संगठन, प्रकाशन तथा प्रचार-प्रसार का कार्य कर सकते हैं। महत्वपूर्ण यह है कि कार्य आगे बढ़ते रहना चाहिए। आशा है, आप सभी का सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

मकर संक्रान्ति, 2072 वि., 5117 युगाब्द **स्वामी शरण**

पाण्डु नगर, कानपुर

ॐ

1. ओम् साधना

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्। ॐ खम् ब्रह्म।।

जो आदित्य में पुरुष (ईश्वर) है, वही मैं हूँ। ओम् सर्वव्यापक ब्रह्म है।

यह ॐ महामन्त्र यजुर्वेद का अन्तिम मन्त्र है। यह मन्त्र सम्पूर्ण वेद के मूल तत्व को व्यक्त करता है। वेद के अन्त में प्रतिष्ठित होकर यह मन्त्र स्पष्ट संदेश देता है कि यही वेद स्वाध्याय का फल है। इसी तत्व का अनुभव करना जीव मात्र का परम लक्ष्य है।

ॐ स्तुति मूलतः यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय है। यह ईशोपनिषद् अथवा ईशावास्योपनिषद् के रूप में भी बहु विख्यात है। वेद का अंश होने के कारण ही इसे उपनिषदों में प्रथम स्थान प्राप्त है। अन्य मान्य उपनिषद् आरण्यक अथवा ब्राह्मण ग्रन्थों के भाग हैं। सभी उपनिषद् वेद के इसी मूल तत्व की व्याख्या करने का प्रयास करते हैं जो इस एक मन्त्र में ही सूत्र रूप में कह दिया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता को इसी उपनिषद् का विस्तार तथा सभी उपनिषदों का सार कहा गया है। वेदान्त आदि दर्शनों का भी प्रतिपाद्य विषय मूलतः यही तत्व है।

अतः स्पष्ट है कि यही मन्त्र वेद का मूल मन्त्र, बीज मन्त्र, गुरु मन्त्र है। इस मन्त्र का स्वाध्याय, ध्यान, चिन्तन - मनन करना हम सभी का कर्तव्य है। इसी से हमें अपने सत्य स्वरूप का ज्ञान हो सकेगा तथा जीवन लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव हो सकेगी। इस मन्त्र के ऋषि स्वयम् ब्रह्मा जी हैं तथा देवता आत्मा। वेद में आत्मा तथा परमात्मा को अभिन्न माना गया है, अतः वेद में परमात्मा के लिए आत्मा शब्द का प्रयोग किया गया है। परमेश्वर तथा परमात्मा जैसे शब्द लोक में इसलिए प्रचलित हुए हैं क्योंकि आत्मा और परमात्मा में भेद माना जाने लगा। वेद तो एक ईश, एक आत्मा का विचार ही मानता है।

गायत्री वेद का प्रमुख छन्द है। वेद में सर्वाधिक मन्त्र गायत्री छन्द में हैं। इसके अनेक भेद होते हैं। दैव गायत्री छन्द में मात्र एक अक्षर होता है। ॐ शब्द

में एक वर्ण या अक्षर है। ओम् परमात्मा का मुख्य नाम है। यह ओम् ही देव गायत्री मन्त्र है। सभी उपनिषद् इस ओम् का ही ध्यान करने का आदेश देते हैं तथा ओम् को जानना, समझना, पाना ही जीवन का परम लक्ष्य बताते हैं। याजुषी गायत्री में 6, प्राजापात्या गायत्री में 8, साम्नी गायत्री में 15, आर्ची गायत्री में 18 तथा आर्षी गायत्री में 24 वर्ण या अक्षर होते हैं। विचारणीय है कि गायत्री छन्द में न्यूनतम एक वर्ण या अक्षर तथा अधिकतम 24 वर्ण या अक्षर होते हैं। मुख्य वैदिक छन्दों में चार वर्णों का अन्तर होता है। इस प्रकार 28 अक्षरों का उष्णिक छन्द होता है। संयोगवश किसी मन्त्र में एक वर्ण न्यून या अधिक होने पर उसे निकटतम छन्द में स्वीकार कर लिया जाता है। इस प्रकार गायत्री छन्द में अधिकतम 25 वर्ण या अक्षर हो सकते हैं। यदि किसी मन्त्र में 26 वर्ण या अक्षर हों तो उसे गायत्री अथवा उष्णिक् दोनो छन्द स्वीकार कर सकते हैं। 27 वर्ण या अक्षर होने पर मन्त्र को स्पष्ट रूप से उष्णिक् ही माना जायेगा, गायत्री नहीं माना जा सकता है। अतः यजुर्वेद का अन्तिम मन्त्र ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्। ॐ खम् ब्रह्म।। ओम् मन्त्र तो है ही, यह वास्तविक गायत्री मन्त्र भी है।

ॐ तत्व

ॐ परमात्मा का मुख्य नाम है। सनातन वैदिक धर्म में सभी मन्त्रों तथा प्रार्थनाओं से पूर्व ॐ का उच्चारण अवश्य किया जाता है। वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ तथा समस्त ज्ञान - विज्ञान धर्म एवं संस्कृति का मूल स्रोत है। वेद परमात्मा की वाणी तथा शब्द ब्रह्म के रूप में परमात्मा का प्रत्यक्ष स्वरूप भी है। चारो वेद संहितओं में जिन मन्त्रों में मूल रूप में स्वतः ॐ शब्द आया है, उन्हें विशेष रीप से ॐ मन्त्र कहा जाता है। सामान्यतः वेद के सभी मन्त्र ॐ का ही वर्णन तथा स्तुति करते हैं ।

यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय ॐ स्तुति है। इसका अन्तिम सूक्त ओम् सूक्त है। इसका अन्तिम मन्त्र ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्। ॐ खम् ब्रह्म।। प्रमुख ॐ मन्त्र है। इसे ॐ महामन्त्र भी कहा जाता है। वेद शब्द ब्रह्म है। उसका अमृत ॐ स्तुति है, उसका भी सार तत्व ॐ सूक्त है। उसमें सर्वोच्च

तत्व ॐ महामन्त्र है। ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम् । ॐ खम् ब्रह्म।। उसमें ओम् ही परम तत्व है।

ओम् परमात्मा का मुख्य नाम है। ओम् अव्यय है, अर्थात् इस शब्द में व्याकरण के किसी नियम से परिवर्तन नहीं होता है। यह लिङ्ग, वचन, कारक से परे है। इसमें न कोई उपसर्ग लगता है, न प्रत्यय। ओम् शब्द पूर्णरूपेण अविकारी है। वह एक ही है, अतः उसका द्विवचन या बहुवचन नहीं बन सकता। परमात्मा का मुख्य नाम भी उसके जैसे गुणों वाला ही हो सकता है। इसीलिए ओम् नाम प्रमुख है, शेष सभी नाम गुणवाची हैं, अतः नाम नहीं हैं, वास्तव में स्तुति हैं। परमात्मा का नाम ओम् ही है।

वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ तथा समस्त ज्ञान-विज्ञान एवम् धर्म-संस्कृति का मूल स्रोत है। वेद परमात्मा की वाणी तथा शब्द ब्रह्म के रूप में परमात्मा का प्रत्यक्ष स्वरूप भी है। सभी वेद मन्त्रों से पूर्व ओम् का उच्चारण अवश्य किया जाता है। प्रतिदिन प्रातः - सायम् ओम् ध्वनि के पश्चात् वेद पाठ तथा ज्योति-स्वरूप ओम् का ध्यान करना चाहिए।

वेद में कहा गया है, ओम् आनन्दमय, सर्वदेवमय है, सभी देव शक्तियाँ उसी में समाहित हैं। अतः ओम् से पृथक् किसी देवता की कोई आवश्यकता नहीं है, कोई विशेष महत्व तो नहीं ही है। सभी देव उसके अंश मात्र हैं, गुण मात्र हैं। ओम् सूर्य है तो अन्य देव किरण मात्र हैं। वह महासागर है तो अन्य देव एक परमाणु मात्र हैं।

वह दानियों के लिए तथा सुत के लिए महादानी है तो हमें भी यह सब कुछ दे सकता है, दे ही रहा है। केवल हममें पात्रता होनी चाहिए। परमात्मा ने हमसे एक ही मांग की है, स्पष्ट किया है कि उसके पास सब कुछ है तथा वह उदार महादानी भी है। परन्तु वह देता है दानियों को एवम् सुत को। हमें दानी बनना होगा, परमात्मा का अनुग्रह अनुदान पाने के लिए देना भी सीखना होगा। जो देना नहीं जानते, वे पाने के अधिकारी नहीं हैं। हमें सुत होना होगा, स्वयम् को परमात्मा का उत्तम उत्तराधिकारी बनाना होगा। श्रेष्ठ गुणों को, श्रेष्ठ आचरण को अपने जीवन में पूर्णता देनी होगी। परमात्मा का अनुदान निकृष्ट

लोगों के लिए नहीं हो सकता है।

ओम् परमात्मा दानियों के लिए महादानी है। वह सुत' को देता है। सु धातु का अर्थ है उत्पन्न करना या होना। अतः सुत का अर्थ है उत्पन्न हुआ। सुत का सामान्यतः अर्थ सन्तान होता है। हम सब उस परमात्मा से उत्पन्न होने के कारण उसके लिए सन्तान ही तो हैं। सु धातु का अर्थ ऐश्वर्य होना भी होता है। हम उसके सुत हैं। ईश्वर के सुत हैं तो ऐश्वर्य या ईश्वरत्व भी हममें होना ही चाहिए। सु धातु का अर्थ आसवन करना भी होता है। अतः सुत को आसवन करने में समर्थ होना चाहिए। आसवन करने का अर्थ है किसी द्रव्य से सार तत्व को निचोड़ लिया जाये। हमें परमात्मा से भी उसके गुणों को, चेतना को, दिव्यता को आसवन कर लेना चाहिए तथा संसार में भी सार को ग्रहण करने का स्वभाव बनाना चाहिए। सुत का एक और शाब्दिक अर्थ हो सकता है। सु = अच्छा, श्रेष्ठ, सुन्दर। 'त' प्रत्यय है पूर्णतावाची। अर्थात् सुत ऐसा हो जिसमें श्रेष्ठता की पूर्णता हो, जो पूर्णतः श्रेष्ठ हो। परमात्मा का सुत तो ऐसा होना ही चाहिए। हमें इस गरिमा के निर्वाह का प्रयास अपनी क्षमता के अनुसार करना चाहिए, सफलता तो मिलेगी ही।

दैनिक उपासना

उपासना का अर्थ है निकट बैठना। उप का अर्थ है समीप, निकट तथा आसन का अर्थ है बैठना। हम जिसकी उपासना करेंगे, भावनात्मक रूप से जिसके निकट होंगे, हममें उसी के गुण-कर्म-स्वभाव विकसित होंगे। ईश्वर की उपासना से हमें ईश्वरीय दिव्यगुण प्राप्त होंगे, जीवन में सुख-शान्ति तथा निर्मलता आयेगी। उपासना के लिए हम जो साधन तथा जो मार्ग अपनायेंगे, जीवन में उसका प्रभाव भी अवश्य पड़ेगा। वेदमन्त्रों से ईश्वर की उपासना करने से मन्त्रों की दिव्यता का लाभ भी हमें अवश्य मिलेगा तथा हमारा जीवन वैदिक संस्कृति की श्रेष्ठता से ओत-प्रोत हो जायेगा।

दैनिक उपासना में भावना तथा नियमितता महत्वपूर्ण है। सरल कर्मकाण्ड प्रक्रिया को उपासना में सहायता के लिए अपना सकते हैं, परन्तु उसे भार न बनने दें। विशेष परिस्थिति में विधिवत् उपासना सम्भव न हो सके तो मन्त्रों का

मौन मानसिक पाठ करके भी नियमितता का निर्वाह कर सकते हैं।

1. शुद्धता-पवित्रता :- उपासना के समय शरीर तथा वस्त्रों की निर्मलता शुद्धता भावनात्मक मनोभूमि तथा वातावरण बनाने में सहायक है। स्थान को स्वच्छ कर यथा सम्भव स्नान करें तथा स्वच्छ वस्त्र धारण करें। जब उपासना का उद्देश्य ध्यान में रखकर इतना करते हैं तो भाव भूमि स्वतः बन जाती है। यदि अस्वस्थता, ऋतु की प्रतिकूलता अथवा किसी अन्य कारण से स्नान आदि करना सम्भव न हो तो भी उपासना यथासम्भव अवश्य करें। शुद्धता का सम्बन्ध स्थान, वस्त्र, शरीर, आसन आदि बाह्य साधनों से है जबकि पवित्रता मन-मस्तिष्क से सम्बन्धित है। उपासना शान्तचित्त तथा प्रसन्नचित्त होकर सद्भावना तथा सद्विचारों के साथ की आनी चाहिये। क्रोध, द्वेष, दुर्भावना जैसे नकारात्मक विचार मन से दूर होने चाहिये।

2. आसन :- आसन का सामान्यतः अर्थ बैठना है। जिस वस्तु पर बैठते हैं, उसे भी आसन कहते हैं। उपासना में आसन का एक भाव शरीर की स्थिति भी है। सामान्यतः किसी ध्यानात्मक आसन में बैठना उचित माना जाता है, जैसे सुखासन, पद्मासन, सिद्धासन, स्वास्तिकासन, वज्रासन। मुख्य बात यह है कि मेरुदण्ड सीधा रहना चाहिये। विशेष परिस्थिति में आसन्दी (कुर्सी) पर बैठकर, खड़े होकर अथवा लेटकर भी उपासना का क्रम बनाये रख सकते हैं।

3. स्थान-दिशा-सामग्री :- यदि घर में किसी स्थान पर वेद स्थापना हो तथा वहाँ पर उपासना करने की सुविधा हो तो वहीं पर वेद भगवान् के सम्मुख उपासना करना उत्तम है। अन्यत्र किसी भी दिशा अथवा स्थान पर बैठकर उपासना कर सकते हैं। जिस आसन पर बैठें, वह स्वच्छ तथा सुविधाजनक होना चाहिये जिससे कुछ समय एक स्थिति में बैठने पर कष्टकारी न हो।

उपासना के लिए भावना ही महत्वपूर्ण है, कोई पूजन सामग्री नहीं। बैठने के लिए उपयुक्त आसन, वेदायन अथवा कोई वेद ग्रन्थ तथा प्रसाद रूप में वितरण के लिए जल भी पर्याप्त है। पूरा ध्यान उपासना में लगायें, सामग्री की व्यवस्था में नहीं। अधिक पूजन सामग्री तथा जटिल कर्मकाण्ड प्रक्रिया उपासना में सहायक नहीं, बाधक ही हैं।

4. पाठ-स्वाध्याय :- वेद मन्त्रों का पाठ करें, उनका अर्थ भी पढ़ें तथा मनोयोग से मन में धारण करें। सम्पूर्ण वेद संहिता न हो तो भी वेदायन में प्रस्तुत वेद सूक्तों का पाठ तथा अर्थ-चिन्तन अवश्य करें। न्यूनतम ओम् स्तुति का पाठ तो नियमित रूप से करें ही। प्रार्थना के रूप में शिव सङ्कल्प सूक्त तथा हिरण्यगर्भ सूक्त जैसे गेय सूक्तों का सस्वर पाठ करें। सस्वर पाठ में परिवार के सभी सदस्य एक साथ सम्मिलित हों तो अति उत्तम है।

5. समापन :- इसके पश्चात् उपासना पुस्तकों को श्रद्धा पूर्वक यथा-स्थान प्रतिष्ठित कर दें। परमपिता परमात्मा, वेद भगवान् तथा उपस्थित परिजनों को प्रणाम करें। तुलसीदल तथा फल अथवा जल उपासना स्थल पर परमात्मा तथा वेद भगवान् को भावनात्मक रूप से समर्पित कर प्रसाद रूप में परिजनों में वितरण करें तो उत्तम है।

वैदिक सत्संग - यज्ञ

वैदिक परम्परा में सत्संग को यज्ञ तथा उपासना को सन्ध्या कहा जाता है। दोनों में वेद मन्त्रों का पाठ, ध्यान तथा स्वाध्याय-मनन ही महत्वपूर्ण है। उपासना तथा सत्संग में भेद केवल व्यक्तिगत तथा सामूहिकता का है। उपासना का सामूहिक प्रयास सत्संग है। उपासना व्यक्तिगत है तथा सत्संग सामूहिक। सत्संग से प्रेरणा प्रशिक्षण भी मिलता है। सामूहिक प्रयास होने के कारण उसका महत्व अधिक है। उपासना से व्यक्तिगत लाभ होता है तथा सत्संग समाज के लिए उपयोगी है। उपासना में भावनात्मक सघनता अधिक होती है तथा सत्संग में प्रसार-विस्तार का भी महत्व होता है। अतः उपासना के साथ ही सत्संग भी आवश्यक है। सामाजिक वातावरण व्यक्ति को प्रभावित करता है तथा विराट व्यक्तित्व समाज को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं।

सत्सङ्ग तथा साधना-उपासना सहित सभी धार्मिक कार्यों में शब्द ब्रह्म वेद भगवान् को ही परमात्मा के प्रत्यक्ष प्रतीक स्वरूप में स्थापित करना चाहिए। अन्य कोई प्रतीक मानना आवश्यक नहीं है। आस्था-श्रद्धा केवल परमात्मा के लिए है तथा शब्द ब्रह्म वेद ही उसका एक मात्र प्रत्यक्ष स्वरूप है। माता-पिता, गुरु तथा विद्वानों का आदर-सम्मान तथा सेवा-सहायता अवश्य

करनी चाहिए, परन्तु आस्था-उपासना केवल परमात्मा तथा वेद के लिए है।

यज्ञ-सत्संग में महत्वपूर्ण भाव है सामूहिकता। इसमें सभी को सक्रिय भागीदारी करनी चाहिए तथा अपनी योग्यता के अनुसार वेद मन्त्रों का पाठ तथा व्याख्या करनी चाहिए। दैनिक तथा साप्ताहिक सत्संग में अनिवार्यतः सभी को वक्ता तथा श्रोता दोनों होना चाहिये। विशेष अवसरों पर यदि इतना सम्भव न हो सके तो भी सामूहिक मन्त्रपाठ में सभी को सम्मिलित होना चाहिये। उपासना-सत्संग यथासम्भव प्रतिदिन करना चाहिये। उपासना प्रतिदिन प्रातः तथा सायम् दो बार अवश्य करें। सायंकालीन उपासना रात्रि में शयन से पूर्व भी कर सकते हैं।

नियमित सत्संग में प्रयास होना चाहिये कि क्रमशः वेद पाठ तथा व्याख्या करते हुए सम्पूर्ण वेद का पाठ तथा व्याख्या पूर्ण की जाये। सम्पूर्ण वेद उपलब्ध न हो तो वेदायन की स्थापना भी कर सकते हैं। चारो वेदों के महत्वपूर्ण चुने हुए सूक्त 'वेदायन' में प्रस्तुत किये गये हैं। मन्त्र साधना हेतु जनसामान्य के लिए 'वेदायन' उपयोगी है। वेदायन को ही वेद भगवान् का लघु रूप मानकर उसका सस्वर पाठ करें। एक-एक परिजन क्रमशः एक-एक मन्त्र का अर्थ प्रस्तुत करें। पारिवारिक नियमित सत्संग में सभी परिजन मन्त्र-व्याख्या में योगदान करें। पुस्तक में लिखी व्याख्या सभी परिजन पढ़ सकते हैं, सुयोग्य परिजन विस्तृत व्याख्या कर सकते हैं। प्रयास करना चाहिए कि यथासम्भव सम्पूर्ण वेद का पाठ-स्वाध्याय क्रमशः पूर्ण किया जाये।

दैनिक पारिवारिक सत्सङ्ग करना बहुत लाभप्रद है। यदि इतना सम्भव न हो सके तो साप्ताहिक सत्सङ्ग तो होने ही चाहिए। वेद में सत्संग को सामान्यतः यज्ञ कहा गया है। यज्ञ शब्द यज् धातु से बना है। यज् के तीन अर्थ हैं देव पूजा, सङ्गतिकरण तथा दान। अतः यज्ञ का अर्थ हुआ दिव्य शक्ति सम्पन्न सत्पुरुषों का सम्मान-सहयोग, इसके लिए सङ्गतिकरण अर्थात् सामूहिक प्रयास तथा सम्पत्ति-संसाधनों को समर्पित करना। यज्ञ में हवन भी महत्वपूर्ण हैं। हवन का अर्थ है दान तथा आदान-प्रदान करना। हवन का सन्देश स्पष्ट है कि अपनी क्षमता के अनुसार दें तथा आवश्यकता के अनुसार लें। यज्ञ-

हवन में सामूहिक प्रयास तथा सहयोग का भाव है। वेद में अग्नि का अर्थ है गतिस्वरूप, अग्रणी। यह शब्द परमात्मा, तेजस्वी मनुष्यों तथा तेजोमय जीवन के अर्थ में आता है। इस अर्थ में ही यज्ञ का एक विशेषण अग्निहोत्र भी हो सकता है। वेद में यज्ञ के लिए अथवा उससे सम्बन्धित किसी कर्मकाण्ड के लिए दहन या ज्वलन अथवा उसके किसी समानार्थी या पर्यायवाची शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है। इतना तो स्पष्ट है कि वैदिक यज्ञ में वनस्पति को जलाना अभिप्रेत नहीं है, ऊष्मा तथा प्रकाश के लिए आवश्यक होने पर ऋतु तथा काल के अनुसार ऐसा कर सकते हैं, परन्तु यज्ञ में अनिवार्य मानकर काष्ठ आदि जलाना उचित नहीं है।

विभिन्न सम्प्रदायों तथा सङ्गठनों में उपासना-सन्ध्या तथा यज्ञ-सत्संग की अनेक विधियाँ प्रचलित हैं। उनमें वेद मन्त्रों के साथ ही अन्य पुस्तकों के वाक्यों तथा कुछ अपनी ओर से भी जोड़कर जटिल कर्मकाण्ड बना दिया गया है। वे उनके साम्प्रदायिक आग्रह मात्र हैं तथा वेद की दृष्टि में उनकी कोई धार्मिक महत्ता नहीं है।

ॐ

2. वेदार्थ सोपान

वेद विश्व का प्राचीनतम साहित्य तथा भारतीय धर्म - संस्कृति का मूल स्रोत है। वेद का पाठ तथा स्वाध्याय करना हमारा परम धर्म है। हमारी मान्यताएं, चिन्तन तथा आचार - विचार वेद के अनुकूल होना चाहिए। अध्यात्म तथा भौतिक सामाजिक जीवन का उचित सन्तुलन तथा समन्वय वेद भगवान् का मुख्य निर्देश है। भौतिकता तथा अध्यात्म को वेद ने समान महत्व दिया है। उससे जीवन में सांसारिक सफलता भी उसी तरह प्राप्त होती है जैसे आध्यात्मिक दिव्य शक्तियाँ तथा शान्ति। इसके लिये व्यावहारिक पाठ्यक्रम के रूप में वेद का अध्ययन होना चाहिये।

वेद हमारे व्यक्तिगत हित तथा सामाजिक एकता का मुख्य आधार है। भारतीय संस्कृति मूलतः वैदिक संस्कृति ही है। उसके विभिन्न रूप वैदिक संस्कृति की शाखायें हैं, उसी से उत्पन्न हैं। मानव मात्र की एकता समानता, सामाजिक समरसता तथा सामाजिक न्याय उसके प्रमुख संदेश हैं।

वेद से शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शान्ति, सुखमय जीवन तथा पारिवारिक-सामाजिक सहित सभी समस्याओं का समाधान सम्भव है। सनातन हिन्दू धर्म के सभी कर्मकाण्ड, संस्कार, पर्व, सत्संग आदि में केवल वेदमंत्रों का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। अध्यात्म तथा भौतिक-सामाजिक जीवन का उचित सन्तुलन तथा समन्वय वेद भगवान् का मुख्य निर्देश है। भौतिकता तथा अध्यात्म को वेद ने समान महत्व दिया है तथा उससे जीवन में सांसारिक सफलता भी उसी तरह प्राप्त होती है जैसे आध्यात्मिक दिव्य शक्तियाँ तथा शान्ति। इसके लिए व्यावहारिक पाठ्यक्रम के रूप में वेद का अध्ययन होना चाहिए।

वेद यदि किसी कर्म को करने का स्पष्ट निर्देश देते हैं तो वह अनिवार्य कर्तव्य है। यदि वेद किसी कार्य को करने से रोकते हैं तो उसे कभी नहीं करना चाहिए। जिस सम्बन्ध में वेद में स्पष्ट विधि या निषेध अर्थात् करने या न करने

का स्पष्ट निर्देश नहीं है, उसमें विवेक के अनुसार गुण-दोष पर विचार करके समय और आवश्यकता के अनुकूल निर्णय लेना चाहिए।

कोई भी निर्णय वेद की किसी भावना के विपरीत नहीं होना चाहिए, यही धर्म है। वेद की प्रत्येक बात तर्क संगत, प्रामाणिक तथा वैज्ञानिक है, ऐसा सभी विद्वानों का मत है। वेद की कोई बात अभी तक तर्क विरुद्ध नहीं प्रतीत हुई है। अतः वेद को आधार मानना सदैव लाभदायक तथा उपयोगी है।

वेद हमारे व्यक्तिगत हित तथा सामाजिक एकता का आधार है। भारतीय संस्कृति मूलतः वैदिक संस्कृति ही है। उसके विभिन्न रूप वैदिक संस्कृति की शाखाएँ हैं तथा उसी से उत्पन्न हैं। मानव मात्र की एकता, समानता, सामाजिक समरसता तथा सामाजिक न्याय उसके मुख्य निर्देश हैं। वैदिक इन्दु या हिन्दु संस्कृति का स्रोत तथा आधार-वेद, उसकी भाषा-संस्कृत, दर्शन-ऋत, आचरण यज्ञ तथा समाज इन्दु है। वेद, संस्कृत भाषा, वैदिक इतिहास, वैदिक विज्ञान-दर्शन तथा वैदिक आचरण ही वैदिक संस्कृति है। वैदिक धर्म-संस्कृति पूर्णतः व्यवस्थित, सुपरिभाषित तथा स्पष्ट है। इस विषय में हमारे भ्रमों का कारण हमारा अज्ञान ही है।

वेद-मन्त्र सरल पाठ

वेद-मन्त्र सरल पाठ में मन्त्र का सन्धियों से मुक्त पाठ प्रस्तुत किया जाता है। इसका अर्थ है कि पदान्त में अन्य पद की सन्धि नहीं होती है। सरल पाठ में क्रिया विभक्ति अथवा नामिक विभक्ति के पश्चात् कोई शब्द या पद सन्धि के द्वारा नहीं मिलाया जाता है। इसी प्रकार अव्यय आदि शब्दों में जहाँ विभक्ति का लोप होता है, उनके अन्त में भी किसी पद या शब्द या शब्दांश की सन्धि नहीं होती है। इस प्रकार सरल पाठ में सभी पद पृथक् तथा स्पष्ट होते हैं। वेद मन्त्रों का सरल पाठ जनसाधारण के लिए, विशेष रूप से विद्यार्थियों के लिए वेद पाठ तथा अर्थ समझने के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

वेद-मन्त्रार्थ

मन्त्रार्थ में हमने मन्त्र का यथासम्भव शाब्दिक अनुवाद देने का प्रयास

किया है। वेदमन्त्र के किस पद के लिए भाषा में किस पद का प्रयोग किया गया है, यह भी पूर्णतः स्पष्ट है। मन्त्र का पद यथावत् देकर भाषा में अर्थ दिया गया है। संस्कृत में बहुधा वर्तमान काल की सहायक क्रियाएं अस्ति (है) आदि का लोप होता है, अर्थात् इनके विना वाक्य पूर्ण हो जाता है। भाषा में इनका प्रयोग आवश्यक होता है। हमने प्रयास किया है कि उनको भी कोष्ठक में दिया जाये जिससे यह स्पष्ट रहे कि यह शब्द वेदमन्त्र में नहीं है तथा वाक्य पूरा करने के लिए भाषा में लिखना पड़ा है। इसी प्रकार संयोजक शब्दों (अथवा, तथा आदि) भी वाक्य पूर्ण करने के लिए इसी रूप में दिये गये हैं। इस प्रकार हमने मन्त्रार्थ में तटस्थता, निष्पक्षता, वस्तुनिष्ठता तथा प्रामाणिकता का ध्यान रखने का पूर्ण प्रयास किया है। फिर भी यदि कोई भूल-चूक रह गयी होगी तो विद्वानों के मार्गदर्शन के अनुसार भविष्य में संशोधन-परिष्कार किया जा सकता है।

वेद-मन्त्र भावार्थ

भावार्थ में मन्त्र के भाव तथा सन्देश को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। यह वेदार्थ नहीं है, भावार्थ है। इसमें हमारे विवेक की सीमा है तथा मतभेद के लिए पर्याप्त अवकाश भी है। इससे वेदमन्त्र तथा वेदार्थ की प्रामाणिकता प्रभावित नहीं होती है। प्रवचनकर्ता इसमें अपने विवेक के अनुसार परिवर्तन-परिष्कार के लिए स्वतन्त्र हैं।

वेद-मन्त्र पदार्थ

पदार्थ में मुख्यतः धातुज शब्दों में धातु स्पष्ट करना आवश्यक माना गया है। अन्य पदों सर्वनाम, अव्यय, संख्या, उपसर्ग आदि के अर्थ को लेकर कोई मतभेद नहीं है। संज्ञा, सर्वनाम तथा क्रियाएं धातुज हैं। उनमें धातु स्पष्ट कर देने से वास्तविक शाब्दिक अर्थ स्पष्ट हो जाता है। कुछ धातुएं अनेकार्थी भी होती हैं। मन्त्र में जिस अर्थ की उपयोगिता हो, उसे ग्रहण कर सकते हैं। धातु के एक से अधिक अर्थों के अनुसार भी यदि मन्त्र का अर्थ हो सकता है तो श्लेष के रूप में स्वीकार्य है। इसमें विचारधारा को लेकर कोई दुराग्रह नहीं होना चाहिए। हमें वेद के विचारों को महत्व देना चाहिए, वेदमन्त्रों का अर्थ अपने विचार के

अनुसार करने का दुराग्रह उचित नहीं है। वेदमन्त्रों का सरल स्वाभाविक शाब्दिक अर्थ सभी अध्येता सहज रूप से जानें तथा उसका चिन्तन-मनन कर स्वयम् अपने विवेक के अनुसार विचार विकसित करें। इसके पश्चात् भावार्थ तथा व्याख्या प्रत्येक व्यक्ति अपने विवेक के अनुसार स्वतन्त्र रूप से कर सकता है।

वेदार्थ करने में अनेक विद्वान् अपने विचार को वेद में दर्शाने का प्रयास करते हैं। इसके लिए अनेक शब्द ही नहीं वाक्यांश तथा कई वाक्य तथा वेदमन्त्र का अर्थ करते समय जोड़ देते हैं जिनके लिए कोई शब्द या पद वेदमन्त्र में होता ही नहीं है। इसे अध्याहार कहा जाता है। कहा जाता है कि अध्याहार मन्त्र का अर्थ स्पष्ट करने के लिए दिया जाता है। स्पष्ट है कि इस प्रकार विद्वान् मन्त्रार्थ के स्थान पर भावार्थ करते हैं। कई विद्वान् तो पदार्थ में भी अध्याहार के नाम ऐसी टिप्पणियां तक दे देते हैं जिनको उचित नहीं माना जा सकता है। हम उनकी आलोचना नहीं करना चाहते हैं। उन्होंने जो भी प्रयास किये, उससे ही वेद के अध्ययन को दिशा मिली तथा हम इस प्रकार निष्पक्ष प्रामाणिक वेदार्थ करने का प्रयास कर पा रहे हैं। भविष्य में विद्वान् अधिक उत्तम, निष्पक्ष तथा प्रामाणिक वेदार्थ प्रस्तुत करेंगे, ऐसी आशा - अपेक्षा करना स्वाभाविक है।

ॐ

3. अध्यात्म चिकित्सा

अध्यात्म मूलतः चेतना विज्ञान है। जीव तथा निर्जीव के बीच अन्तर इस चेतना के ही कारण होता है। कहा जा सकता है कि चेतना ही जीवन का कारण है। अतः जीव की समस्याएं तथा समाधान भी चेतना पर ही आधारित हैं। रोगों का कारण भी चेतना है तथा उसकी चिकित्सा भी चेतना के कारण ही सम्भव हो पाती है। किसी निर्जीव को न तो कोई रोग होता है और न ही किसी चिकित्सा की आवश्यकता पड़ती है। चिकित्सा विज्ञान की मूलभूत धारणा यही है कि रोग की चिकित्सा तो शरीर की जीवनी शक्ति स्वयम् ही करती है, औषधियां केवल उसमें सहायता ही करती हैं।

अध्यात्म चिकित्सा में हम चेतना शक्ति को ही चिकित्सा का माध्यम बनाते हैं। अध्यात्म की मूलभूत मान्यता है कि समस्त ब्रह्माण्ड या सम्पूर्ण सृष्टि का मूल एक चेतन सत्ता है जो सर्वत्र व्याप्त है। उसे परमात्मा, ब्रह्म, ईश्वर आदि नामों से जाना जाता है। विभिन्न देश-काल में अलग-अलग भाषाओं में उसे अनेक नाम दिये गये हैं जिनका मूलभूत आशय उस एक परम चेतना से ही है। सर्वव्यापी उस परम चेतना से हम रोगों की चिकित्सा सहित विभिन्न समस्याओं का समाधान कर सकते हैं। अध्यात्म सर्वोच्च मनोविज्ञान है तथा भावना एवम् प्रार्थना की शक्ति को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जाता है।

आध्यात्मिक स्वास्थ्य तथा चिकित्सा का आधार शुद्ध चेतना विज्ञान अध्यात्म है जो भौतिकी, रसायन व जीव विज्ञान की ही तरह पूर्णतः प्रामाणिक और सर्वश्रेष्ठ विज्ञान है। विज्ञान की सभी शाखाओं का एकमात्र लक्ष्य सृष्टि के मूल रहस्य, उस आदि मूल तत्व की खोज करना है जिससे ब्रह्माण्ड की समस्त ऊर्जाओं तथा द्रव्य का उद्भव और विकास हुआ है। यह निश्चित है कि सम्पूर्ण पदार्थ परमाणुओं से बने हैं और परमाणुओं का निर्माण कुछ मूल कणों से होता है। सभी मूलकण ऊर्जा के ही घनीभूत रूप हैं और ऊर्जा तथा पदार्थ का परस्पर रूपान्तरण सम्भव है। सम्पूर्ण द्रव्य ऊर्जा से ही बना है। भौतिकी का

परम लक्ष्य उस मूल ऊर्जा को खोज निकालना है जिससे सभी प्रकार की ऊर्जाओं तथा द्रव्य-पदार्थों का विकास हुआ है।

अध्यात्म उसी मूल ऊर्जा चेतना तत्व का विज्ञान है। उसे समझने तथा लाभ उठाने के लिए उपासना-साधना हमारा अनिवार्य धर्म या कर्तव्य है। वेद मन्त्र साधना से शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शान्ति, सुखमय जीवन तथा पारिवारिक सामाजिक सहित सभी समस्याओं का समाधान सम्भव है। इस प्रकार स्वास्थ्य के सभी चार आयामों शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य का आधार अध्यात्म ही है। इससे सभी चार आयामों में स्वास्थ्य रक्षा हो सकती है। नियमित उपासना तथा सत्संग का क्रम बना रहे तो बिना विशेष प्रयास के भी वेदमन्त्रों की दिव्य शक्तियों का लाभ-अनुदान मिलता रहेगा।

अध्यात्म तथा भौतिक सामाजिक जीवन का उचित सन्तुलन तथा समन्वय वेदमन्त्र साधना तथा चिकित्सा का मुख्य तत्व है। भौतिकता तथा अध्यात्म को वेद ने समान महत्व दिया है। उससे जीवन में सांसारिक सफलता अर्थात् शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य भी उसी तरह प्राप्त हो सकता है जैसे आध्यात्मिक दिव्य शक्तियाँ तथा मानसिक शान्ति। इसके लिए व्यावहारिक पाठ्यक्रम के रूप में वेद का अध्ययन होना चाहिये। वेद व्यक्तिगत तथा सामाजिक विकास का मुख्य आधार है। भारतीय संस्कृति मूलतः वैदिक संस्कृति ही है। उसके विभिन्न रूप वैदिक संस्कृति की शाखायें हैं, उसी से उत्पन्न हैं। मानव मात्र की एकता समानता, सामाजिक समरसता, सहयोग तथा सामाजिक न्याय उसके प्रमुख संदेश हैं।

वेद मन्त्रों की साधना से दिव्य चेतना शक्ति का विकास होता है जिसे दिव्य शक्तियों का जागरण भी कहते हैं। नियमित वेदपाठ, स्वाध्याय, चिन्तन, मनन करते हुए मन्त्र को आत्मसात् करना ही मन्त्र साधना है। मन्त्र इतना स्पष्ट तथा आत्मसात् हो जाए जैसे उसका स्पष्ट दर्शन होने लगे तो वह मार्गदर्शक तथा संरक्षक हो जाता है। इस शक्ति से जीवन में अनेक कार्य सिद्ध होने लगते हैं।

वेद मन्त्र साधना में किसी चूक से हानि की सम्भावना नहीं है। इसमें नियमितता एवम् मनोयोग का महत्व है तथा सुयोग्य मार्गदर्शक की भी उपयोगी भूमिका है। मार्गदर्शक के प्रति श्रद्धा-सम्मान तथा सेवा-सहयोग की भावना साधक के लिए आवश्यक है। मार्गदर्शक को मन्त्र पाठ तथा अर्थ स्पष्ट करने में सक्षम तो होना ही चाहिए, यह भी आवश्यक है कि वह सच्चे मन से शिष्य-साधक का हित चाहने वाला हो।

मानसिक समस्याओं के साथ ही अनेक मनोदैहिक कष्टों के निवारण में भी मन्त्र शक्ति उपयोगी है। इसका अनुभव हमारे कुछ मित्रों को भी है तथा हमने उसका उल्लेख समाचारपत्रों में प्रकाशित लेखों आदि में किया भी है। मन्त्र शक्ति के नाम पर हम अकर्मण्यता या अन्धविश्वास को स्वीकार नहीं कर सकते। मन्त्र शक्ति से अप्रत्याशित परिणाम मिल सकते हैं परन्तु अकर्मण्य बनकर मन्त्र प्रयोग से सभी कार्य हो जाने के चमत्कार की आशा नहीं की जानी चाहिये। चिकित्सा सुविधा उपलब्ध न होने पर मन्त्र शक्ति से जीवन रक्षा सम्भव है, चिकित्सा के साथ मन्त्र प्रयोग लाभदायक है, परन्तु जानबूझकर चिकित्सा की उपेक्षा कदापि न करें। मन्त्र शक्ति से अध्ययन में सहायता मिलती है क्योंकि इससे मानसिक क्षमता बढ़ती है, परन्तु मन्त्रशक्ति से बिना अध्ययन किये सारी योग्यता प्राप्त कर लेने की कल्पना नहीं करनी चाहिये। जीवन में सफलता के लिए साधन तथा साधना दोनों आवश्यक हैं। संसाधन भी चाहिए, प्रयास-परिश्रम भी आवश्यक है, फिर मन्त्र शक्ति से सफलता की गति अवश्य बढ़ेगी। परन्तु शून्य प्रयास होने पर भी मन्त्र के चमत्कार की आशा में अकर्मण्य न बनें।

वैदिक मन्त्र साधना सभी को सुलभ, व्यावहारिक सबसे उत्तम जीवन शैली भी है। यह प्राचीन मनीषियों की अति उपयोगी खोज है। इसको समझना बहुत सरल है और साधना भी सहज सम्भव है। इसके लिए साधारण विवेक, धैर्य, दृढ़ संकल्प और नियमित जीवनचर्या का स्वभाव बनाना ही आवश्यक साधन हैं। विद्यार्थियों को इस दिशा में मोड़ना सरल भी है और सर्वाधिक उपयोगी व लाभप्रद भी। यह जन सामान्य के लिए आवश्यक जीवनचर्या का

अंग है।

उपासना-साधना की आध्यात्मिक शक्ति के प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। आध्यात्मिक, मानसिक, प्राण शक्ति का प्रयोग करने, सिखाने तथा ऐसी शक्ति प्रदान करने या जाग्रत करने के लिए अनेक पद्धतियां विकसित की गयीं हैं। ऐसे अनेक प्रयोगों में साधना तथा पवित्रता के स्थान पर धन को महत्वपूर्ण माना जाता है। जो जितना अधिक शुल्क दे सकता है, उसे ऐसी शक्ति का उतना ही उच्च स्तर 'प्रदान' किया जाता है। धन प्राप्त करने के उद्देश्य से नये-नये स्तर बनाते जाना तथा उस स्तर की शक्ति 'प्रदान' करने के लिए अधिक से अधिक शुल्क प्राप्त करना ही प्रमुख लक्ष्य बन गया है। अनेक लोग शक्ति 'प्रदान' करने के नाम पर धन लेने के लिए विज्ञापन और प्रचार के सभी उपाय अपनाते हैं। स्पष्ट है कि इस प्रक्रिया में धन का प्रवाह तो हो रहा है, परन्तु साधना का नहीं। इससे जुड़े अधिकांश लोग दिन-रात झूठ बोलना तथा छोटे-छोटे स्वार्थ के लिए दूसरों को धोखा देना स्वभाव बनाये रहते हैं। उनमें साधना तथा सत्य के प्रति सम्मान की भावना तक नहीं होती है। अध्यात्म में समुचित साधना से ही लाभ होगा। अति प्राचीन काल से प्रमाणित वेदमार्ग उत्तम है। गुरु को भावना के साथ धन का दान भी देना चाहिए, परन्तु वह शक्ति 'प्रदान' करने का मूल्य नहीं हो सकता है। इतना स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि अध्यात्म में व्यवसाय नहीं हो सकता, यह तो उदार मन तथा सेवा-भावना से फलीभूत होने वाली विद्या है। धन लेकर शक्ति प्रदान करने का दावा करने वाले तथा गोपनीय मन्त्र का उपदेश देने वाले लोग किसी साधक का हित नहीं कर सकते।

वेद सुनिश्चित राजमार्ग है। इस मार्ग से लक्ष्य प्राप्त होना निश्चित है, भटकने का कोई भय नहीं है। आध्यात्मिक शक्ति के लिए स्वाध्याय, सत्य, सेवा, समर्पण की आवश्यकता होती है। उसे धन से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। सत्य, लोकहित तथा साधना अनिवार्य है, उसका कोई विकल्प नहीं है।

ॐ

4. वेद मन्त्र साधना

मन्त्र, शक्ति तथा मन्त्र साधना के महत्व से सभी परिचित हैं। समाज में मन्त्र शक्ति के नाम से भ्रमित करने तथा स्वार्थ सिद्धि और छल करने वाले भी बहुत हैं। अतः मन्त्र तथा मन्त्र विज्ञान का सत्य स्वरूप जानना आवश्यक है।

वेद मन्त्र विज्ञान के अन्तर्गत वेद संहिताओं में सङ्कलित मन्त्रों का अध्ययन किया जाता है। चिकित्सा-उपचार तथा समस्या समाधान के लिए व्यावहारिक मन्त्र साधना में वेदाङ्ग के अन्तर्गत शाखा तथा वेद के पञ्चकाण्ड 1. ज्ञान, 2. विज्ञान, 3. कर्म, 4. उपासना, 5. भक्ति तथा पञ्च मूल मान्यताएँ भी सम्मिलित हैं। वेद मन्त्र विज्ञान की साधना पूर्णतः हानि रहित, सुरक्षित तथा निश्चित रूप से फलदायी है।

वैदिक विज्ञान में वेद मन्त्र विज्ञान सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। इसके अन्तर्गत वेद तथा वेदाङ्ग सम्मिलित हैं। इसमें वेद संहिताओं का परिचय, वेद मन्त्रों का पाठ तथा पाठ विधियों का अभ्यास, वेद शाखाओं के मुख्य कारक मन्त्रों का अनुक्रम, ऋषि, देवता, छन्द, स्वर का अध्ययन किया जाता है। वेद की मुख्य मान्यताएँ तथा साधना भी इसमें सम्मिलित हैं। पाँच मुख्य साधना-मान्यताएँ 1. ओ3म्, 2. ऋत, 3. इन्दु, 4. सनातन, 5. विश्व देव हैं। ये सभी वैदिक शब्द हैं तथा वैदिक दर्शन को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं।

1. मन्त्र :- मन्त्रों की संहिता या सङ्ग्रह ही वेद है। मन्त्र केवल वेद में ही हैं, वेद की समस्त रचनाएँ ही मन्त्र हैं। अन्य पुस्तकों में श्लोक या वाक्य हैं। कुछ ग्रन्थों का महत्व दर्शाने के लिए कहा जाता है कि इस ग्रन्थ की वेद तुल्य प्रतिष्ठा है तथा इन रचनाओं को लोग मन्त्र के समान आदर देते हैं। स्पष्ट है कि वे रचनाएँ मन्त्र नही हैं, साधारण रचनाओं से अधिक महत्वपूर्ण अवश्य हैं। उपनिषद्, गीता, सूत्र, रामायण आदि इसी तरह के ग्रन्थ हैं परन्तु उनमें मन्त्र नहीं हैं।

वेद मन्त्र संहिताएँ चार हैं - ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद। इन संहिताओं को ही संयुक्त रूप से वेद या विश्ववेद कहते हैं। इनमें लगभग इक्कीस हजार मन्त्र हैं, अतः वेद को एकविंशति सहस्री मन्त्र संहिता भी कहते हैं।

2. पाठ :- मन्त्रों का शुद्ध लयात्मक पाठ करना मन्त्र साधना का प्रथम चरण है। शुद्ध पाठ तथा शुद्ध अर्थज्ञान के लिए छन्द पाठ, पद पाठ तथा निरुक्त पाठ उपयोगी है। इनका अभ्यास किसी योग्य प्रशिक्षक के मार्ग दर्शन में करना चाहिए। शुद्ध अर्थ समझने के लिए धात्वादि कोश, वैदिक शब्द कोश, व्याकरण, छन्द विज्ञान का सामान्य ज्ञान उपयोगी है। वेदायन पाठ तथा अर्थ का सामान्य अभ्यास समुचित फलदायी है। सम्पूर्ण वेद का पाठ कर लेना साधना की सिद्धि में सहायक होता है।

3. शाखा :- प्रत्येक मन्त्र के साथ ऋषि, देवता, छन्द, स्वर, संहिता अनुक्रम का उल्लेख किया जाता है। ये मन्त्र की पञ्च शाखाएँ हैं। इनके आधार पर ही ऋषियों ने वेद मन्त्र संहिताओं का सम्पादन किया है, अतः जन सम्पादित संहिताओं को भी शाखाएँ कहते हैं। अपने साधना मन्त्र की पञ्च शाखाओं का ज्ञान आवश्यक है।

4. काण्ड :- मन्त्र के पञ्च काण्ड या विभाग है - 1. ज्ञान, 2. विज्ञान, 3. उपासना, 4. कर्म, 5. भक्ति। इनका सामान्य ज्ञान तथा साधना मन्त्र में इनका सन्दर्भ तथा प्रभाव जानना लाभप्रद है।

5. साधना :- पञ्च साधना तत्व 1. ओ3म्, 2. विश्ववेद, 3. इन्दु, 4. सनातन, 5. ऋत का मूल भाव समझना आवश्यक है। यह भी मन्त्र साधना का प्रमुख अङ्ग है। इसे अपनाने से भ्रम तथा मनोबाधाएँ दूर होती हैं तथा साधना के लिए आत्मबल प्राप्त होता है।

विशेष : मन्त्र विज्ञान की यह पञ्चाङ्ग - पञ्चामृत साधना है। इससे सफलता अवश्य प्राप्त होती है। त्रुटियों से सफलता में विलम्ब या न्यूनता सम्भव है परन्तु सफलता मिलेगी अवश्य, यह सुनिश्चित है।

वैदिक मन्त्र शक्ति

वेद विश्व का प्राचीनतम साहित्य तथा धर्म संस्कृति का मूल आधार हैं। वेद में 2000 से अधिक सूक्तों में लगभग 21000 मन्त्र हैं। इन मन्त्रों की साधना से दिव्य चेतना शक्ति का विकास होता है जिसे दिव्य शक्तियों का जागरण भी कहते हैं। नियमित वेद पाठ, स्वाध्याय, चिन्तन, मनन से मन्त्र को आत्मसात् करना ही मन्त्र साधना है। मन्त्र इतना स्पष्ट तथा आत्मसात् हो जाए कि उसका स्पष्ट दर्शन होने लगे तो वह मन्त्र मार्गदर्शक तथा संरक्षक हो जाता है। इस शक्ति से जीवन में अनेक कार्य सिद्ध होने लगते हैं।

मन्त्र साधना में किसी चूक से हानि की सम्भावना नहीं है। इसमें नियमितता एवम् मनोयोग का महत्व है तथा सुयोग्य मार्गदर्शक की भी उपयोगी भूमिका है। मार्गदर्शक के प्रति श्रद्धा-सम्मान तथा सेवा-सहयोग की भावना साधक के लिए आवश्यक है। मार्गदर्शक को मन्त्र पाठ तथा अर्थ स्पष्ट करने में सक्षम तो होना ही चाहिए, यह भी आवश्यक है कि वह सच्चे मन से शिष्य-साधक का हित चाहने वाला हो। धन लेकर शक्ति प्रदान करने का दावा करने वाले तथा गोपनीय मन्त्र का उपदेश देने वाले साधक का अहित ही करते हैं, हित नहीं कर सकते।

मानसिक समस्याओं के साथ ही अनेक मनोदैहिक कष्टों के निवारण में भी मन्त्र शक्ति उपयोगी है। इसका अनुभव हमारे कुछ मित्रों को भी है तथा हमने उसका उल्लेख दैनिक जागरण कानपुर में 22 दिसम्बर 1999 को प्रकाशित लेख में किया भी है। रेकी मन्त्र साधना का जापानी रूप है तथा धन को प्रधानता देने के कारण व्यावसायिक हो गया है। इसका जो स्वाभाविक परिणाम होता है, वह सामने है। स्पष्ट है कि अध्यात्म में व्यवसाय नहीं हो सकता, यह तो उदार मन से सेवा-भावना से फलीभूत होने वाली विद्या है।

मन्त्र शक्ति के नाम पर हम अकर्मण्यता या अन्धविश्वास को स्वीकार नहीं कर सकते। अध्यात्म सर्वोच्च मनोविज्ञान है तथा भावना एवम् प्रार्थना की शक्ति को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जाता है। मन्त्र शक्ति से अप्रत्याशित परिणाम मिल सकते हैं परन्तु अकर्मण्य बनकर मन्त्र प्रयोग से

सभी कार्य हो जाने के चमत्कार की आशा नहीं की जानी चाहिये। चिकित्सा सुविधा उपलब्ध न होने पर मन्त्र शक्ति से जीवन रक्षा सम्भव है, चिकित्सा के साथ मन्त्र प्रयोग लाभदायक है, परन्तु जानबूझकर चिकित्सा की उपेक्षा कदापि न करें।

मन्त्र शक्ति से अध्ययन में सहायता मिलती है क्योंकि इससे मानसिक क्षमता बढ़ती है, परन्तु मन्त्रशक्ति से बिना अध्ययन किये सारी योग्यता प्राप्त कर लेने की कल्पना नहीं करनी चाहिये। जीवन में सफलता के लिये साधन तथा साधना दोनों आवश्यक हैं। संसाधन भी चाहिए, प्रयास-परिश्रम भी आवश्यक है, फिर मन्त्र शक्ति से सफलता की गति अवश्य बढ़ेगी। परन्तु शून्य संसाधन तथा शून्य प्रयास होने पर मन्त्र के चमत्कार की आशा में अकर्मण्य न बनें।

यह सत्य है कि अभी तक वेद का कोई भी प्रकाशन सुविधाजनक लघु आकार तथा अल्पमूल्य में उपलब्ध नहीं है। जो प्रकाशन हुए हैं, वे विशाल आकार में तथा अनेक भागों में हैं। स्वाभाविक रूप से उनका मूल्य भी अधिक है। जन सामान्य के लिए वे दुर्लभ तथा अव्यावहारिक हैं।

हमारे पास सम्पूर्ण वेद का प्रकाशन उचित आकार-प्रकार में करने हेतु संसाधन नहीं हैं। चारों वेदों के महत्वपूर्ण चुने हुए सूक्त 'वेदायन' में प्रस्तुत किये गये हैं। यजुर्वेद अष्टादशी के रूप में यजुर्वेद के अठारह अध्याय मन्त्रार्थ, भावार्थ तथा धातुज पदार्थ सहित प्रकाशित कर दिये गये गये हैं। हमने वेद भाष्य शब्दार्थ, मन्त्रार्थ, विशेष व्याख्या सहित प्रामाणिक तथा व्याकरण सम्मत निरुक्त प्रक्रिया के आधार पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। 'वेदायन' को 'लघु वेद के रूप में सर्व सुलभ बनाने तथा प्रामाणिक तथा सरल भाष्य द्वारा सुगम बनाने का प्रयास किया गया है। मन्त्र साधना हेतु जनसामान्य के लिए 'वेदायन' को आधार बनाना पर्याप्त है।

वैदिक मन्त्र साधना सभी को सुलभ, व्यावहारिक सबसे उत्तम जीवन शैली भी है। यह प्राचीन मनीषियों की अति उपयोगी खोज है। इसको समझना बहुत सरल है और साधना भी सहज सम्भव है। इसके लिए सधारण विवेक, धैर्य, दृढ़ सङ्कल्प और नियमित जीवनचर्या का स्वभाव बनाना ही आवश्यक

साधन हैं। विद्यार्थियों को इस दिशा में मोड़ना सरल भी है और सर्वाधिक उपयोगी व लाभप्रद भी। यह जन सामान्य के लिए आवश्यक जीवनचर्या का अङ्ग है।

वेद मन्त्र साधना का आधार शुद्ध चेतना विज्ञान अध्यात्म है जो भौतिकी, रसायन व जीव विज्ञान की ही तरह पूर्णतः प्रामाणिक और सर्वश्रेष्ठ विज्ञान है। वास्तव में विज्ञान की सभी शाखाओं का एकमात्र लक्ष्य सृष्टि के मूल रहस्य, उस आदि मूल तत्व की खोज करना है जिससे ब्रह्माण्ड की समस्त ऊर्जाओं तथा द्रव्य का उद्भव और विकास हुआ है। यह निश्चित है कि सम्पूर्ण पदार्थ परमाणुओं से बने हैं और परमाणुओं का निर्माण कुछ मूल कणों से होता है। सभी मूलकण ऊर्जा के ही घनीभूत रूप हैं और ऊर्जा तथा पदार्थ का परस्पर रूपान्तरण सम्भव है। सम्पूरण द्रव्य ऊर्जा से ही बना है। भौतिकी का परम लक्ष्य उस मूल ऊर्जा को खोज निकालना है जिससे सभी प्रकार की ऊर्जाओं तथा द्रव्य-पदार्थों का विकास हुआ है। अध्यात्म उसी मूल ऊर्जा चेतना तत्व का विज्ञान है। उसे समझने तथा लाभ उठाने के लिए उपासना-साधना हमारा अनिवार्य धार्मिक कर्तव्य है। नियमित सन्ध्या-उपासना तथा सत्संग का क्रम बना रहे तो बिना विशेष प्रयास के भी वेदमन्त्रों की दिव्य शक्तियों का लाभ-अनुदान मिलता ही रहेगा।

वेद मन्त्र साधना से शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शान्ति, सुखमय जीवन तथा पारिवारिक सामाजिक सहित सभी समस्याओं का समाधान सम्भव है। सभी प्रकार के धार्मिक कर्मकाण्ड, संस्कार, पर्व, सत्संग आदि में केवल वेदमन्त्रों का ही प्रयोग किया जाना चाहिये।

रेकी, सिद्ध, प्राणिक, ध्यान, मन्त्र चिकित्सा भी आध्यात्मिक चिकित्सा के विभिन्न रूप हैं तथा वेद मन्त्र विज्ञान की ही प्रणालियाँ हैं। रेकी गौतम बुद्ध के उपदेशों पर आधारित संस्कृत ग्रन्थ कमल सूत्र से विकसित हुई हैं। आधुनिक युग में जापान के प्राध्यापक डॉ. उसई ने इसका प्रचार किया। अतः इसमें जापानी शब्द तथा प्रतीकों को महत्वपूर्ण माना जाता है। परन्तु जापानी प्रतीकों के स्थान पर वेद मन्त्रों का प्रयोग अधिक प्रभावशाली होता है। धन को

अधिक महत्व देने से रेकी साधना का बहुत पतन हुआ है। इससे बचना चाहिए। सिद्ध साइंस व प्राणिक हीलिंग के नाम से ही स्पष्ट है कि ये भारतीय वैदिक अध्यात्म का नवीन रूप मात्र हैं। मूलतः ये भी वेद मन्त्र विज्ञान के ही रूप हैं। इसी प्रकार ध्यान तथा मन्त्र चिकित्सा की भी अनेक विधियों तथा प्रणालियों का विकास तथा प्रचार हुआ है।

वैदिक मन्त्र शक्ति प्रयोग

वेद को परमात्मा से उत्पन्न तथा उनका प्रत्यक्ष स्वरूप माना गया है। इसीलिए वेद को वेद ब्रह्म, वेद माता तथा वेद भगवान् भी कहते हैं। वेद नित्य है, सत्य है, शाश्वत है, ऋत है तथा साक्षात् शब्द ब्रह्म है। वेद मन्त्र दिव्य शक्तियों से सम्पन्न हैं। इसीलिए सनातन धर्म के सभी ऋषि तथा महान् ग्रन्थ वेद को सर्वोच्च सम्मान देते हैं। वेद मन्त्रों का प्रयोग करने से जीवन की सभी समस्याओं का समाधान करने में सहायता मिलती है। इसके लिए गुरु द्वारा मार्ग दर्शन, शक्ति जागरण तथा विधिवत् साधना करने की आवश्यकता होती है।

वेद मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण तथा प्रवाहपूर्ण पाठ करना मन्त्र शक्ति का प्रयोग करने के लिए न्यूनतम योग्यता है। गुरु के मार्गदर्शन तथा अभ्यास से पहले इतनी क्षमता अर्जित कर लेनी चाहिये। इतना अभ्यास हो जाने पर मन्त्र शक्ति का जागरण की वास्तविक साधना प्रारम्भ होती है। साधक को ऋषि अर्थात् मन्त्रदृष्टा बनना होता है। मन्त्रदृष्टा का अर्थ है है मन्त्र का दर्शन करने वाला। प्रवाहपूर्ण लयात्मक मन्त्र पाठ तथा अर्थ जानना प्रथम चरण है। चिन्तन, मनन, ध्यान के माध्यम से किसी मन्त्र को आत्मसात् कर लेना, अपना बना लेना ही मन्त्र दृष्टा होना है। मन्त्रदृष्टा के लिए किसी मन्त्र का भाव तथा तत्वदर्शन प्रत्यक्ष की भाँति पूरी तरह स्पष्ट होते हैं। साधक इस तरह जितने सूक्तों का दृष्टा होता है, मन्त्र प्रयोग की शक्ति उसमें उतनी ही अधिक होती है।

इसमें गुरु की भूमिका दीपक को प्रज्ज्वलित करने की होती है। मन्त्र प्रयोग की शक्ति एक बार प्राप्त हो जाने पर कभी समाप्त नहीं होती है, परन्तु साधना द्वारा उसे जाग्रत रखना आवश्यक है। निरन्तर नियमित रूप से साधना

करते रहना सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।

गुरु के बिना साधना असम्भव तो नहीं परन्तु कठिन अवश्य है। उपयुक्त सद्‌गुरु का चयन भी बहुत महत्वपूर्ण है। सद्‌गुरु को इतना योग्य तो होना ही चाहिये कि वह वेदमन्त्रों को सहजता से पढ़ सके एवम् उनका अर्थ समझ सके। जिसमें इतनी योग्यता भी न हो, उसे गुरु बनाने से अच्छा है कि वेद भगवान् को ही गुरु मानकर स्वयम् साधना करें। गुरु को सुलभ होना चाहिये तथा व्यक्तिगत रूप से शिष्य की समस्याओं का समाधान करना चाहिये। गुरु में अपने तथा अपने परिवार से अधिक शिष्य के हित की कामना तथा सहयोग की भावना होनी चाहिये। ऐसे सद्‌गुरु के प्रति सम्मान, सेवा तथा समर्पण की भावना होना स्वाभाविक है। शिष्य होने के लिए इतनी अपेक्षा तो है ही।

एक मास की साधना से मन्त्र शक्ति का जागरण होने लगता है। साधना तथा आध्यात्मिक शक्ति की कोई अन्तिम सीमा नहीं होती है। साधना-स्वाध्याय जीवन भर निरन्तर चलते रहना चाहिये तथा गुरु से समय-समय पर सम्पर्क करते रहना चाहिये।

वेद मन्त्र साधना सदैव कल्याणकारी है, इससे कभी अहित नहीं होता। किसी भूल-चूक या नियम टूटने से कोई हानि नहीं होती है, कोई शंका होने पर गुरु से सम्पर्क करना चाहिये। किस परिस्थिति में कौन-सा मन्त्र प्रयोग किया जाए, इसके लिए मन्त्र चयन तथा प्रयोग विधि साधक की प्रकृति व क्षमता के अनुसार गुरु के मार्ग दर्शन में निर्धारित की जा सकती है। वैदिक साधना से समस्याओं का समाधान तथा शुभ इच्छाओं की पूर्ति की जा सकती है। यह क्षमता विधिपूर्वक साधना से प्राप्त हो सकती है।

पञ्चाङ्ग साधना

साधना तथा मन्त्र प्रयोग के पाँच अङ्ग या स्तर हैं :

1. अभ्यास, 2. सिद्धि, 3. संस्पर्श, 4. प्रेषण, 5. संकल्प

1. अभ्यास :- साधना का प्रथम चरण वेद मन्त्रों का अभ्यास है। नियमित पाठ तथा चिन्तन करते हुए वेद मन्त्रों का शुद्ध तथा प्रवाहपूर्ण

लयात्मक पाठ करने का अभ्यास कर लेना चाहिये। इससे साधक में मन्त्र चेतना का जागरण हो जाता है तथा वेद मन्त्र प्रयोग से कार्य सिद्धि की क्षमता का विकास होने लगता है। कुछ चुने हुए सूक्तों का अर्थ सहित स्वाध्याय कर उन्हें आत्मसात् कर लेना चाहिये।

आवश्यकता के अनुसार मन्त्र का चयन कर लयात्मक पाठ करना साधना भी है तथा वेद मन्त्र प्रयोग का सरल रूप भी। साधारण स्थितियों में साधक अपने तथा अन्य लोगों के लिए इस विधि से लाभ पहुँचा सकता है। मन्त्र का उच्चारण तथा साधक की भावना जितनी शुद्ध तथा पवित्र होगी, लाभ उतना ही अधिक होगा।

2. सिद्धि :- उपासना - साधना में कुछ विशेष सूक्तों का अभ्यास करने से उनके मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। अपनी क्षमता के अनुसार इसमें एक माह से एक वर्ष तक का समय लग सकता है। न्यूनतम एक सूक्त का 21 दिनों तक पाठ अवश्य करें।

3. संस्पर्श :- मन्त्र सिद्ध होने पर साधक यदि किसी व्यक्ति पर हाथ रख कर उसका वाचन कर दे तो कार्य सिद्ध हो जाता है। हाथ रखते ही चमत्कार की तरह सब कुछ हो जाने की अपेक्षा नहीं करनी चाहिये। कार्य की जटिलता के अनुपात में यह प्रयोग करना होता है। साधारण आवश्यकताओं, कुछ शारीरिक कष्ट आदि में एक बार प्रयोग पर्याप्त होता है, परन्तु कभी-कभी कई दिनों अथवा कई सप्ताहों तक प्रयोग करते रहना पड़ता है।

4. प्रेषण :- निरन्तर साधना तथा अभ्यास से साधक की मन्त्र शक्ति इतनी विकसित हो जाती है कि वह दूरस्थ व्यक्ति या वस्तु पर भी प्रयोग कर सकता है। इसके लिए चुने हुए सूक्त का पुनः विशेष अभ्यास करना चाहिये।

5. संकल्प :- साधना तथा ध्यान के अभ्यास से जब साधक ऋषि का स्तर प्राप्त कर लेता है तो मन्त्र शक्ति प्रखर हो जाती है। सर्वव्यापी चेतना तथा प्राण ऊर्जा का प्रयोग करके साधक कोई भी कार्य सिद्ध कर सकता है।

जन साधारण को ऋषियों के कार्य अद्‌भुत चमत्कार प्रतीत होते हैं। यह केवल उच्चस्तरीय वैदिक मन्त्र साधना का स्वाभाविक परिणाम है। इसमें ऋत

अर्थात् सार्वभौम प्राकृतिक नियमों के विपरीत कुछ भी नहीं होता है। सार्वभौम प्राकृतिक नियमों को ही वेद में ऋत कहा गया है, यही विज्ञान का भी आधार है।

वेद ही राजमार्ग

वेद सुनिश्चित राजमार्ग है। इस मार्ग से लक्ष्य प्राप्त होना निश्चित है, भटकने का कोई भय नहीं है। आध्यात्मिक शक्ति के लिए स्वाध्याय, सत्य, सेवा, समर्पण की आवश्यकता होती है। उसे धन से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। सत्य, लोकहित तथा साधना अनिवार्य है, उसका कोई विकल्प नहीं हो सकता है।

उपासना-साधना की आध्यात्मिक शक्ति के प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। आध्यात्मिक, मानसिक, प्राण शक्ति का प्रयोग करने, सिखाने तथा ऐसी शक्ति प्रदान करने या जाग्रत करने के लिए अनेक पद्धतियां विकसित की गयीं हैं। ऐसे अनेक प्रयोगों में साधना तथा पवित्रता के स्थान पर धन को महत्वपूर्ण माना जाता है। जो जितना अधिक शुल्क दे सकता है, उसे ऐसी शक्ति का उतना ही उच्च स्तर 'प्रदान' किया जाता है। धन प्राप्त करने के उद्देश्य से नये-नये स्तर बनाते जाना तथा उस स्तर की शक्ति 'प्रदान' करने के लिए अधिक से अधिक शुल्क प्राप्त करना ही प्रमुख लक्ष्य बन गया है। अनेक लोग शक्ति 'प्रदान' करने के नाम पर धन लेने के लिए विज्ञापन और प्रचार के सभी उपाय अपनाते हैं। स्पष्ट है कि इस प्रक्रिया में धन का प्रवाह तो हो रहा है, परन्तु साधना का नहीं। इससे जुड़े अधिकांश लोग दिन-रात झूठ बोलना तथा छोटे-छोटे स्वार्थ के लिए दूसरों को धोखा देना स्वभाव बनाये रहते हैं। उनमें साधना तथा सत्य के प्रति सम्मान की भावना तक नहीं होती है।

समुचित साधना से ही लाभ होगा। अति प्राचीन काल से प्रमाणित वेदमार्ग उत्तम है। गुरु को भावना के साथ धन का दान भी देना चाहिए, परन्तु वह शक्ति 'प्रदान' करने का मूल्य नहीं हो सकता है।

ॐ

5. वैदिक विज्ञान

वेद, वैदिक साहित्य तथा वैदिक विद्याओं का क्रमबद्ध, सुव्यवस्थित तथा तर्क सङ्गत, अध्ययन ही वैदिक विज्ञान है। इसके अन्तर्गत वेद, वेदाङ्ग, अनुवेद, उपाङ्ग, उपवेद के रूप में सम्पूर्ण वैदिक साहित्य तथा विद्याओं का तर्क सम्मत वर्गीकरण तथा अध्ययन सम्मिलित है। इस प्रकार वेद विज्ञान में सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान समाहित है।

वेद विश्व का प्राचीनतम साहित्य तथा समस्त विद्याओं का मूल स्रोत है। वेद शुद्ध विज्ञान है। उसका प्रायोगिक, व्यावहारिक तथा लोक-उपयोगी रूप वेदाङ्ग, अनुवेद, उपाङ्ग, उपवेद के रूप में विकसित हुआ है। वेद में मन्त्रों का सङ्ग्रह है, अतः वेद संहिता भी कहते हैं। वेद मन्त्रों के तीन प्रकार ऋक्, यजुः, साम हैं, इसलिए वेदत्रयी कहा जाता है। सभी मन्त्र चार संहिताओं में हैं, अतः चतुर्वेद संहिता कहते हैं। सम्पूर्ण मन्त्रों की संहिता को वेद या विश्व वेद कहते हैं।

वेद विज्ञान : प्रमुख तत्व

1. वेद संहिता

वेद में सूक्तों का संग्रह है जिसे संहिता भी कहते हैं। प्रत्येक सूक्त में एक या अनेक मन्त्र होते हैं। इस प्रकार वेद में संग्रहीत रचनाओं की मूल इकाई सूक्त ही है। मन्त्र सूक्तों के अंश हैं। वेद में कुछ सूक्तांश अथवा मन्त्र विभिन्न सूक्तों में पुनरुक्त मिलते हैं। एक सूक्त समग्र रूप में ही सम्पूर्ण होता है। सूक्तियों के रूप में मन्त्र अथवा मन्त्रांश भी लोक-प्रसिद्ध हो गये हैं जो स्वाभाविक है।

वेद के चार भाग हैं। ये चार वेद मन्त्र संहिताएं 1. ऋग्वेद संहिता, 2. साम वेद संहिता, 3. अथर्व वेद संहिता, 4. यजुःवेद संहिता। ऋग्वेद में 10 मण्डल

हैं, सामवेद में 28 अध्याय हैं, अथर्ववेद में बीस काण्ड हैं तथा यजुर्वेद में 40 अध्याय हैं। इन मण्डल, अध्याय, काण्डों में अनेक सूक्त हैं।

वास्तव में वेद को सूक्तों का संग्रह माना जा सकता है। वेद में सूक्त ही इकाई है। मन्त्र सूक्तों के अंश हैं। विद्वानों वेद के सूक्तों, मन्त्रों तथा पदों या शब्दों तथा वर्णों या अक्षरों तक की गणना की है। वेद का इस प्रकार का व्यापक तथा सूक्ष्म अध्ययन वेद की शुद्धता की रक्षा करने में भी सहायक है।

ऋग्वेद में 10552, सामवेद में 1875, अथर्ववेद में 5977, यजुर्वेद में 1975 मन्त्र हैं। सामवेद के सभी मन्त्र ऋग्वेद में भी हैं। वर्तमान प्रकाशनों में सामवेद के 75 मन्त्र ऋग्वेद में नहीं मिलते हैं। प्राचीन ऋषि मानते हैं कि सामवेद तथा ऋग्वेद के मन्त्र समान होते हैं। ऋक्, अथर्व, साम तथा यजुः संहिताओं में अनेक मन्त्र कई बार आये हैं। इसीलिए इन चारों संहिताओं की कुल मन्त्र संख्या 20379 है। संहिताओं में एक से अधिक बार आये मन्त्रों में कभी-कभी ऋषि, देवता, छन्द, स्वर या पद में कुछ पाठ भेद होता है, परन्तु अधिकतर पाठ पूर्णतः एक समान ही है।

वेदमन्त्र पंचांग

प्रत्येक वेद मन्त्र के साथ ऋषि, देवता, छन्द, स्वर तथा पद पाठ लिखना परम्परा है। सरल पाठ और भी उपयोगी है।

1. वेद पाठ :- सन्धि विच्छेद कर मन्त्र के पदों को अलग-अलग स्पष्ट लिखना सरल पाठ है। यह मन्त्र का पाठ तथा अर्थ करने में अतीव उपयोगी है।

2. छन्द :- मन्त्र के साथ छन्द का नाम तो लिखते ही हैं, उसे स्पष्ट भी कर देना चाहिए। चरण पूरा होने पर अर्द्ध विराम (,) लगा देना चाहिए। छन्द गायत्री (8, 8, 8), इस तरह लिख देने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इस मन्त्र में गायत्री छन्द है जिसमें आठ-आठ वर्णों के तीन चरण होते हैं।

3. देवता :- मन्त्र के विषय या प्रकरण को देवता कहते हैं। यदि किसी मन्त्र का देवता पृथ्वी है तो उस मन्त्र में पृथ्वी के विषय में बताया गया है, रात्रि देवता है तो रात्रि के विषय में बताया गया है।

4. ऋषि :- मन्त्र दृष्टा तथा व्याख्याकार मन्त्र के ऋषि होते हैं। यह गुणवाची भी है। मन्त्र का ऋषि विश्वामित्र है तो उस मन्त्र से अधिकतम लाभ उठाने के लिए विश्व का मित्र होने की भावना बहुत उपयोगी है।

5. स्वर :- वेद पाठ के समय स्वर के उतार-चढ़ाव को मन्त्र के साथ तीन स्वरों 1. उदात्त, 2. अनुदात्त, 3. स्वरित से व्यक्त किया जाता है। संगीत के सात स्वर भी लिखे जाते हैं। स्वर के अनुसार वेद पाठ करने वाले दुर्लभ हैं। अतः कुछ लोग स्वर नहीं लिखते हैं।

2. वेदाङ्ग - वेदार्थ पंचांग

वेद पाठ तथा अर्थ समझने के लिए वेदार्थ पंचांग की पांच विद्याओं का ज्ञान उपयोगी है। वे हैं - 1. शिक्षा, 2. व्याकरण, 3. निघण्टु, 4. निरुक्त, 5. शब्द कोश।

1. शिक्षा :- वेद तो क्या, शिक्षा के बिना कुछ भी नहीं समझा जा सकता है। यहाँ शिक्षा का विशेष अर्थ है अक्षर ज्ञान तथा शुद्ध उच्चारण करने की विधि। इसमें वर्ण, स्वर, मात्रा, उच्चारण स्थान, प्रयत्न, साम या समानता, सन्तान या सन्धि नियम तथा उच्चारण प्रक्रिया का ज्ञान कराया जाता है।

2. व्याकरण :- शुद्ध अर्थ समझने के लिए व्याकरण ही सबसे प्रमुख विद्या है। वैदिक संस्कृत भाषा का व्याकरण तर्क संगत तथा सरल है।

3. निघण्टु :- वैदिक शब्दों के प्राचीन शब्द कोश निघण्टु कहलाते हैं। सामान्यतः इनमें समानर्थी या पर्यायवाची शब्दों की सूची दी गयी है। महर्षि यास्क का निघण्टु उपलब्ध तथा प्रकाशित है, अन्य दुर्लभ हैं।

4. निरुक्त :- निघण्टु में संकलित शब्दों के अर्थ, धातु, प्रत्यय, उपसर्ग़ आदि व्याकरण के नियमों के अनुसार निरुक्त में स्पष्ट किया जाता है। प्रत्येक निघण्टु का अपना निरुक्त भी होता है।

5. कोश :- वेद में आये सभी पदों तथा शब्दों को वर्णमाला के अकारादि क्रम से प्रस्तुत कर निरुक्त के अनुसार साथ में उसका अर्थ स्पष्ट करना आधुनिक वैदिक शब्द कोश है। इसकी सहायता से साधारण लोग भी

वेद का अर्थ सरलता से स्पष्ट तथा शुद्ध रूप से समझ सकेंगे तथा वेद मन्त्रों के मनमाने अर्थ करने की भी समस्या नहीं रह जाएगी।

संयोगवश अभी तक कोई वैदिक शब्द कोश सुलभ नहीं था। हमने इस अभाव की पूर्ति के लिए वैदिक शब्द कोश का प्रकाशन कर दिया है। उसमें अभी सभी वैदिक शब्द नहीं आ सके हैं। साधन सम्पन्न लोग सहायता करें तो वृहद् तथा सम्पूर्ण वैदिक शब्द कोश का प्रकाशन किया जा सकता है। वेद के विद्वानों का अभाव नहीं है, अभाव है तो साधनों का।

वैदिक संस्कृत

वेद की मूल भाषा संस्कृत है, अतः वैदिक संस्कृति का महत्वपूर्ण अङ्ग है। इसका ज्ञान हम सभी के लिए आवश्यक है। संस्कृत विश्व की प्राचीनतम तथा सशक्त भाषा है। समस्त ज्ञान-विज्ञान, धर्म-संस्कृति, कला-तकनीक, सामाजिक जीवन-राजनीति आदि का माध्यम संस्कृत भाषा है। कम्प्यूटर के लिए संस्कृत को सबसे उपयुक्त भाषा माना जा रहा है। भारत से यूरोप तक सभी भाषाएं इसी से उत्पन्न हुईं हैं। आज भी हमारी सभी समस्याओं का समाधान करने की क्षमता संस्कृत भाषा तथा उसके साहित्य वेद में है।

वेदाङ्ग के रूप में मुख्यतः वैदिक भाषा संस्कृत का अध्ययन किया जाता है। इसके मुख्य पाँच विभाग 1. वर्ण शिक्षा, 2. निघण्टु या शब्द शिक्षा, 3. निरुक्त या शब्द निर्माण शिक्षा, 4. व्याकरण अर्थात् पद शिक्षा, 5. शाखा अर्थात् वेद मन्त्रों के छन्द, ऋषि, देवता, स्वर तथा मन्त्र पाठ विधियाँ सम्मिलित हैं। वैज्ञानिक वैदिक विधि से संस्कृत भाषा बहुत सरलता से सीखी जा सकती है। इस प्रणाली में शब्दों अथवा धातुओं के रूप या परम्परागत व्याकरण के जटिल सूत्र नहीं रटने पड़ते हैं। इस विधि से केवल एक दिन या पाँच घण्टों में संस्कृत व्याकरण का व्यावहारिक ज्ञान कराया जा सकता है। वेद की शाखाओं का आधार मन्त्रों के छन्द, ऋषि, देवता स्वर तथा पाठ विधियाँ ही हैं। वेद मन्त्रों का अनिवार्य अङ्ग होने के कारण इनको भी वेदाङ्ग माना गया है।

वैज्ञानिक विधि से संस्कृत भाषा को सरलता से सीखा जा सकता है। मूल व्याकरण का सिद्धान्त इसमें बहुत उपयोगी है। इससे संस्कृत को पढ़ना,

समझना, लिखना, बोलना कुछ ही दिनों के अभ्यास से सरलता से सीखा जा सकता है। इसके अनुसार भाषा को निश्चित स्वरूप प्रदान करने वाले कुछ मूल व्याकरण तत्व सभी भाषाओं में समान होते हैं। शेष बारीकियाँ तथा विद्वता बाद में सीखी जा सकती है। भाषा के मूल तत्व 1. अक्षर, 2. वर्ण, 3. शब्द, 4. पद, 5. वाक्य होते हैं। भारत की सभी लिपियाँ पूर्ण वैज्ञानिक हैं। अतः अक्षर तथा वर्ण लिखने में ही पूर्णतः स्पष्ट हो जाते हैं। धातु, प्रकृति, प्रत्यय, उपसर्ग तथा अव्यय शब्दों को समझ लेने से नये-नये शब्द बनाने की क्षमता आ जाती है और एक-एक शब्द को रटने-सीखने से हम बच सकते हैं।

संस्कृत व्याकरण में मुख्य बात 'पद' बनाना है। वाक्य में प्रयोग करने योग्य शब्द के रूप को पद कहते हैं। शब्द में व्याकरण के चिन्ह लगाकर 'पद' बनाये जाते हैं। पद बनाने में व्याकरण में पांच तत्व 1. कारक, 2. वचन, 3. पुरुष, 4. लकार, 5. लिंग के अनुसार शब्दों में परिवर्तन होता है। प्रत्येक भाषा के व्याकरण में ये पाँच बातें सिखायी जाती हैं। हिन्दी या किसी भाषा के व्याकरण में इन बातों का ज्ञान होने पर मूल संस्कृत व्याकरण बहुत सरलता से सीखी जा सकती है। इस तरह शब्द रूप धातु रूप तथा सूत्र रटने की आवश्यकता नहीं होती है।

शब्द रूप रटने के स्थान पर कारक विभक्ति प्रत्ययों का प्रयोग समझना सरल है। द्विवचन तथा बहुवचन में प्रत्येक कारक का एक ही विभक्ति प्रत्यय है, अतः उनका प्रयोग बहुत सरल है। एक वचन में एक ही कारक विभक्ति में अनेक प्रत्यय होने के कारण कठिनाई होती है। जैसे तृतीया एकवचन में इण, इन, णा, ना, या, आ प्रत्ययों का प्रयोग होता है। इनमें से किस प्रत्यय का प्रयोग कहाँ होगा, यह सीखना ही कठिन समस्या है। इसका भी समाधान है। हम जान गये कि तृतीया एकवचन में इतने प्रत्यय हैं। अतः जहाँ भी इनमें किसी भी प्रत्यय का प्रयोग होगा होगा, वहाँ तृतीया एकवचन मानकर उसका अर्थ समझ सकते हैं। जब स्वयं प्रयोग करना हो तो इन सबके स्थान पर प्रत्येक शब्द के साथ द्वारा, द्वारेण का प्रयोग कर सकते हैं। इसी प्रकार से अन्य विभक्तियों को भी समझ सकते हैं। कर्त्ता कारक प्रथमा एकवचन में शब्द के अन्त में अ, इ, उ,

श्री, लक्ष्मी होने पर विसर्ग (:) लगता है, अन्य शब्दों का लोप हो जाता है। सम्बोधन में भी प्रथमा होती है, परन्तु एकवचन में विसर्ग का सर्वत्र लोप होता है। एकवचन में कर्म कारक द्वितीया में सर्वत्र 'म्', सम्प्रदान चतुर्थी में हेतु, अर्थम्, उपादान पंचमी में 'तः' तथा सप्तमी में 'त्र' लगता है। सम्बन्ध कारक षष्ठी विभक्ति में केवल समास चिह्न '-' का प्रयोग करना चाहिए। ये सभी प्रयोग व्याकरण सम्मत शुद्ध हैं तथा संस्कृत साहित्य में मिलते हैं।

इसी प्रकार धातुओं के साथ भी व्यापक प्रत्ययों का प्रयोग सीखा जा सकता है। सहायक क्रिया, विशिष्ट क्रिया, सार्वक्रिया तथा आधुनिक लकार सिद्धान्त से क्रियाओं का प्रयोग सीखना अधिक वैज्ञानिक, उपयोगी तथा सरल हो गया है।

सर्वनाम, सहायक क्रियाएं, विशिष्ट क्रियाएं आदि संस्कृत भाषा के प्रयोग की क्षमता तथा आत्मविश्वास को बढ़ाने में सहायक हैं। आधुनिक लकार सिद्धान्त तीन कालों वर्तमान, भूत, भविष्य तथा उनके उपभेदों को तार्किक ढंग से समझने तथा प्रयोग करने को सरल बनाता है। प्रारम्भ में विद्यार्थी को द्विवचन तथा मध्यम पुरुष से भी बचाया जा सकता है। संस्कृत व्याकरण त्वम् (तुम) मध्यम पुरुष है तथा भवान् (आप) अन्य पुरुष (प्रथम पुरुष) है। तुम के स्थान पर आप का प्रयोग करना शिष्टाचार भी है तथा मध्यम पुरुष के प्रयोग की आवश्यकता को समाप्त भी कर देता है। युग्म, युगल, द्वय को किसी शब्द के साथ लगा दें तो वह शब्द एक वचन में प्रयोग होकर भी द्विवचन का कार्य करता है।

संस्कृति का संरक्षण तथा प्रचार भाषा के माध्यम से ही होता है। इस्लामी संस्कृति का प्रसार अरबी भाषा के माध्यम से हुआ तथा अंग्रेजी संस्कृति अंग्रेजी भाषा के माध्यम से ही फैली। भारतीय वैदिक संस्कृति का प्रसार भी प्राचीन काल में संस्कृत भाषा के माध्यम से पूरे विश्व में हुआ तथा आज भी विकसित देशों में भारत का सम्मान संस्कृत भाषा तथा वेद के लिए ही है। संस्कृत भाषा को सीखना भारत राष्ट्र तथा भारतीय संस्कृति के प्रति हमारा कर्तव्य भी है।

3. उपाङ्ग - वैदिक दर्शन तथा आचार

उपाङ्ग के अन्तर्गत वैदिक जीवन प्रणाली का निर्धारण करने वाले सूत्र ग्रन्थ सम्मिलित हैं। इसमें दर्शन सूत्र, धर्म सूत्र, गृह्य सूत्र, शुल्व सूत्र, श्रौत सूत्र ग्रन्थ हैं।

सृष्टि के मूल तत्वों के विषय में तार्किक चिन्तन को दर्शन कहते हैं। परम्परा में छः वैदिक दर्शन माने जाते हैं। 1. कपिल का सांख्य, 2. पतंजलि का योग, 3. गौतम का न्याय, 4. कणाद का वैशेषिक, 5. जैमिनी का मीमांसा, 6. कृष्ण द्वैपायन बादरायण वेदव्यास का वेदान्त। महाभारत के कवि कृष्ण द्वैपायन 'वेद व्यास' का ही एक नाम बादरायण भी कहा जाता है। इनके अतिरिक्त बौद्ध, जैन, चार्वाक् दर्शन भी भारतीय दर्शन के रूप में मान्य है। ऋत सिद्धान्त ही इन तीन दर्शन - मतों का भी आधार है।

जैमिनी कृत मीमांसा को पूर्व मीमांसा तथा वेदव्यास कृत वेदान्त को उत्तर मीमांसा भी कहते हैं। धर्म सूत्रों में संस्कार, आश्रम, पुरुषार्थ, सामाजिक ऋण तथा यज्ञ का वर्णन है। गृह्य सूत्रों में धर्म सूत्रों के निर्देशों को कर्मकाण्ड के रूप में सम्पन्न करने की विधियाँ बतायी गयी हैं। शुल्व सूत्रों में उक्त कर्मकाण्ड के आयोजन की व्यवस्था का व्यापक वर्णन मिलता है। श्रौत सूत्रों में कर्मकाण्डों के विस्तार के साथ उनके सञ्चालनकर्ताओं के लिए निर्देश हैं। सञ्चालन के लिए पाँच प्रकार के ऋत्विज ब्रह्मा, होता, उद्गाता, अध्वर्यु, यजमान होते हैं।

वैदिक योग :- उपाङ्ग का सबसे महत्वपूर्ण भाग वैदिक योग है। इसके पाँच स्तर 1. मन्त्र साधना योग, 2. वेद काण्ड योग, 3. प्राण योग, 4. आत्म योग, 5. हठ योग हैं। वैदिक योग मूलतः चेतना विज्ञान तथा साधना प्रणाली है। हठ योग का विकास शरीर को स्वस्थ तथा शक्तिशाली बनाने के लिए किया गया है। इससे शरीर को साधना के योग्य बनाये रखा जा सकता है। योग-साधना योग्य गुरु के मार्ग दर्शन में करनी चाहिए।

आसन, प्राणायाम, ध्यान, बन्ध, नौलि आदि योग की प्रमुख क्रियाएँ हैं। अभ्यास, सदाचार तथा गुरु के आशीर्वाद से इसमें सफलता मिलती है। योग साधक को मिथ्या भाषण, मादक पदार्थ, हिंसा, परपीड़ा तथा छल-कपट आदि का त्याग करना चाहिए। नियमित ध्यान, मन्त्र पाठ तथा परोपकार से साधना में सहायता मिलती है।

वैदिक ध्यान :- किसी एक स्थान पर मन को केन्द्रित कर 'निर्विषय' हो जाना ही ध्यान है। ध्यान की प्रचलित विधियाँ केवल मन के नियन्त्रण अथवा प्रत्याहार के उपाय मात्र हैं। प्रत्याहार का अगला चरण धारणा सिद्ध होने पर ध्यान स्वतः उपलब्ध हो जाता है, उसके लिए अन्य कोई प्रयास नहीं करना होता है।

मूल मान्यताएं

वैदिक धर्म-दर्शन की पांच मूल मान्यताएँ हैं, 1. ओम्, 2. ब्रह्म, 3. ऋत, 4. सत्य, 5. वेदत्व।

1. ओम् :- परमात्मा का मूल नाम ओ3म् है। यह ब्रह्म की मूल ध्वनि है। इस ध्वनि तरंग के सहारे ब्रह्म से साक्षात्कार सम्भव है।

2. ब्रह्म :- सम्पूर्ण सृष्टि का मूल तत्व परम चेतन सत्ता ब्रह्म है। उसे परमात्मा, परमेश्वर, महादेव आदि अनेक नामों से जाना जाता है। वह अनादि, अनन्त, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वकाल सत्ता है। उससे परे कुछ भी नहीं है।

3. ऋत :- सृष्टि का विकास तथा संचालन कुछ निश्चित नियमों के अनुसार होता है जिसे ऋत कहते हैं। ऋत को समझकर उसका उपयोग किया जा सकता है। भौतिक विज्ञान तथा अध्यात्म का विकास इसी आधार पर होता है।

4. सत्य :- जिसका अस्तित्व या सत्ता है, वह सत्य है। जिसका अस्तित्व नहीं है, वह असत्य या मिथ्या है। सत्य कभी नष्ट नहीं होता है, ऋत के अनुसार उसका रूप बदल सकता है। वस्तु सत्य है, प्रकाश सत्य है, परन्तु वस्तु की छाया असत्य है, मिथ्या है, भ्रम है। भ्रम उसे कहते हैं जो होता नहीं है किन्तु होने का आभास देता है। इसे ही माया कहते हैं।

5. वेदत्व :- वेद मूल ज्ञान है तथा ब्रह्म में समाहित है। वेद ब्रह्म का गुण है, अतः 'वेद ब्रह्म' कहा जाता है। परम ब्रह्म के साथ वेद ब्रह्म भी सर्वव्यापक है। साधना द्वारा ब्रह्म से साक्षात्कार कर वेद को प्राप्त किया जा सकता है। यही वेदत्व है।

आदि पुरुष ब्रह्मा ने इसी प्रकार वेद को प्राप्त किया तथा सबके लिए सुलभ बनाया। ब्रह्म से वेद ब्रह्म को प्राप्त करने के कारण ही आदि पुरुष ब्रह्मा कहलाये। चार संहिताओं के अलग-अलग दृष्टा ऋषि अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा हुए। इनके द्वारा चार संहिताओं के रूप में वेद का प्रचार हुआ। ये ही ब्रह्मा के चार मुख हैं। वैदिक सत्संग, 'यज्ञ' का प्रमुख ब्रह्मा कहलाता है जो सम्पूर्ण वेद का विद्वान होता है।

4. उपवेद - विविध वैदिक विद्याएँ

उपवेद के अन्तर्गत मानव समाज के लिए उपयोगी विविध विद्याएँ सम्मिलित हैं। सामान्यतः इन सभी को चार भागों आयुर्वेद, धनुर्वेद, अथर्ववेद, गन्धर्व वेद के अन्तर्गत वर्गीकृत करने का प्रयास किया जाता रहा है। आयुर्वेद में स्वास्थ्य-चिकित्सा, अथर्ववेद में शिल्प, उद्योग तथा अर्थ व्यवस्था से सम्बन्धित विषय, धनुर्वेद में शासन, प्रशासन, युद्ध कला तथा युद्ध सामग्री का उत्पादन तथा प्रयोग, गन्धर्ववेद में विविध ललित कलाएँ, ज्योतिर्वेद में भूगोल-खगोल तथा अन्तरिक्ष विज्ञान के विषयों का अध्ययन होता है। यन्त्रवेद, स्थापत्य वेद, विमान शास्त्र, कूटनीति, नीतिशास्त्र आदि भी उपवेद के ही अन्तर्गत है। वास्तव में इनकी सङ्ख्या सीमित करना सम्भव नहीं है।

आयुर्वेद - वैदिक स्वास्थ्य रक्षा विज्ञान

आयुर्वेद प्रमुख उपवेद है। स्वास्थ्य रक्षा तथा रोगों का उपचार यथा सम्भव प्राकृतिक आधार पर करना इसका प्रमुख तत्व है। इसमें यन्त्रों तथा औषधियों का भी उच्चस्तरीय विकास हुआ है। जन-सामान्य के लिए सरल आयुर्वेद अर्थात् प्राकृतिक स्वास्थ्य रक्षा का ज्ञान उपयोगी है।

प्राकृतिक सरल आयुर्वेद के पाँच प्रमुख विभाग हैं। इसका आधार 1. उपयुक्त आहार, समुचित दिनचर्या, रात्रि चर्या, ऋतु चर्या आदि के साथ आवश्यकता के अनुसार धूप, उष्ण, शीत आदि अनुतापन (सेंक), विविध रश्मि चिकित्सा तथा मर्म स्थानों पर सूक्ष्म दाब (एक्यूप्रेशर) आदि प्रयोग हैं। 2. विभिन्न स्नान विधियाँ अर्थात् जल चिकित्सा, 3. विभिन्न प्रक्रियाएँ घर्षण, मदन, व्यायाम, लेपन, छादन (लपेट आदि), 4. शोधन क्रियाएँ नेति, धौति, वस्ति, शङ्ख प्रक्षालन, स्वेदन आदि तथा 5. उपचार के अन्तर्गत रोगी की समुचित सेवा-परिचर्या, रोग निदान, लङ्घन (उपवास), औषधि तथा अपरिहार्य हो जाने पर शल्य चिकित्सा आदि उपाय सम्मिलित हैं।

इनका ज्ञान होने से सामान्यतः स्वस्थ रह सकते हैं तथा साधारण कष्ट की स्वयम् चिकित्सा कर सकते हैं। कठिन तीव्र रोग की स्थिति में सुयोग्य

आयुर्वेद विशेषज्ञ के मार्ग दर्शन में चिकित्सा करनी चाहिए। आयुर्वेद का अर्थ चिकित्सा विज्ञान ही है। आधुनिक स्वास्थ्य तथा चिकित्सा विज्ञान की उपलब्धियों का लाभ उठाना चाहिए। शल्य चिकित्सा तथा रोग निदान परीक्षण भी आयुर्वेद के अङ्ग हैं। आवश्यक होने पर उनका उपयोग करना चाहिए।

अर्थवेद : वैदिक सर्वोदय

शिल्प, प्रौद्योगिकी, अर्थ व्यवस्था तथा उससे सम्बन्धित क्षेत्र अर्थवेद के विषय हैं। अतः अर्थतन्त्र को नियन्त्रित करने के कारण सामाजिक-प्रशासनिक व्यवस्था को भी अर्थवेद का अङ्ग माना जाता है। धनुर्वेद के अन्तर्गत सैन्य विज्ञान के साथ जन सुरक्षा से सम्बन्धित होने के कारण शासन-प्रशासन को भी सम्मिलित किया गया है। आर्थिक-सामाजिक प्रशासन तथा नागरिक सुरक्षा प्रशासन के बीच विभाजक रेखा खींचना कठिन है।

इस विषय को हमने वैदिक मानव विकासवाद के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। सभी को विकास का अवसर तथा सभी का सम्मान इसके मुख्य तत्व हैं। व्यक्ति, संस्था, समाज, राष्ट्र तथा विश्व के स्तर पर वैदिक मानव विकासवाद के सिद्धान्त समान रूप से लागू होते हैं। समाज के स्तर पर हम विश्वधर्म, संस्कृति परिवार, मूल स्रोत, मूल तत्व तथा प्रेरणा का स्रोत का विचार स्वीकार करते हैं। हमारा प्रयास संगठन सत्संग, प्रकाशन, प्रशिक्षण, प्रसार के लिए कार्य करते रहना है। सबको अवसर मिले तथा प्रयास किया जाए तो सभी का विकास होना सुनिश्चित है।

इसके लिए आवश्यक है कि वैदिक सिद्धान्तों को समझा जाए तथा उनके अनुसार अनिवार्यताएँ तथा नीतियाँ निर्धारित की जाएँ। पञ्च वेद काण्ड तथा पञ्च साधना मान्यताएँ भी इसमें सम्मिलित हैं तथा मानव विकास में सहायक हैं।

गन्धर्व वेद : ललित कला

लेखन, पत्रकारिता एवं काव्य रचना

गन्धर्व वेद में समस्त ललित कलाएँ सम्मिलित हैं। साहित्य, नाटक, गीत, सङ्गीत, नृत्य, मूर्ति, चित्र आदि सभी ललित कलाएँ इसके अन्तर्गत हैं। इनकी सङ्ख्या सामान्यतः 64 मानी जाती है। इनमें सर्वाधिक स्थायी, व्यापक, गम्भीर प्रभाव साहित्य का ही होता है। गद्य, पद्य, नाटक, पत्रकारिता, भाषण सभी साहित्य के अन्तर्गत हैं। अतः इस विधा को हमने प्रमुख माना है। सूचना क्रान्ति के युग में इसका महत्व और अधिक बढ़ जाता है।

गद्य लेखन तथा पत्रकारिता के साथ पद्य रचना का भी प्रशिक्षण दिया जा सकता है। कविता रचने की क्षमता समुचित प्रशिक्षण द्वारा विकसित की जा सकती है। लेखन, पत्रकारिता तथा काव्य रचना का सफल प्रशिक्षण प्रदान किया जा रहा है।

5. अनुवेद - वैदिक इतिहास

जन सामान्य के लिए मुख्य प्रेरणा स्रोत इतिहास ही होता है। मूल इतिहास ग्रन्थों के आधार पर अनेक काव्य तथा नाटक आदि लिखे गये हैं। ऐसी पुस्तकों में इतिहास के साथ कल्पना भी जुड़ती गयी जिससे भ्रम भी फैला। अतः मूल इतिहास ग्रन्थों का स्वाध्याय तथा उनके आधार पर शुद्ध इतिहास का ज्ञान भी हमारा कर्तव्य है। वही हमारी मूल सामाजिक प्रेरणा है। अनुवेद के अन्तर्गत उक्त राजनीतिक - सामाजिक इतिहास के साथ ही प्रातिशाख्य तथा सम्बन्धित अन्य ग्रन्थ भी सम्मिलित हैं। उसमें वेद की शाखाओं तथा सम्बन्धित साहित्य के विषय में वर्णन है। उन्हें वेद शाखाओं तथा वैदिक साहित्य के विकास का इतिहास कह सकते हैं। इसके अन्तर्गत ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् ग्रन्थ भी सम्मिलित हैं। इनमें भी पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध हैं। इनमें वैदिक कालीन सामाजिक जीवन का अच्छा उल्लेख मिलता है। घटना का वर्णन कम है, परन्तु जो भी है, वह बहुत कुछ विश्वसनीय तथा प्रामाणिक है।

पुराण सृष्टि रचना, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, विकास तथा मानव इतिहास का वर्णन करते हैं। पुराणों के पाँच लक्षण 1. सर्ग (सृष्टि), 2. प्रतिसर्ग (प्रलय),

3. मन्वन्तर (काल विभाजन), 4. वंश (राजाओं तथा ऋषियों के वंश परिचय), 5. वंशानुचरित अर्थात् प्रमुख व्यक्तियों के महत्वपूर्ण कार्यों का वर्णन है। इनमें सर्ग, प्रतिसर्ग तथा मन्वन्तर ब्रह्माण्ड विज्ञान तथा वंश एवम् वंशानुचरित मानव इतिहास का वर्णन करते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति से प्रारम्भ कर मानव इतिहास सहित प्रलय तक का सम्पूर्ण वर्णन ही पुराण का विषय है। वैदिक महापुराण के सम्पादन तथा प्रकाशन की आवश्यकता है।

इतिहास के अन्तर्गत घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत किया जाता है। रामायण, महाभारत, रघुवंश, राजतरङ्गिणी तथा पुराण प्राचीन इतिहास के प्रमुख स्रोत हैं। प्राचीन इतिहास आदि युग, कृतयुग या सत्युग, त्रेतायुग, द्वापर युग तथा कलियुग में विभाजित किया गया है। अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थ नष्ट हो गये हैं। फिर भी उपलब्ध ग्रन्थों में लगभग सम्पूर्ण इतिहास क्रमबद्ध रूप से उपलब्ध है। विश्व का प्राचीनतम ऐतिहासिक सम्वत् युगाब्द है। दैनिक जीवन में युगाब्द का प्रयोग करना चाहिए।

सृष्टि से प्रलय तक का सर्वांगपूर्ण विवरण प्रस्तुत करना ही वैदिक इतिहास की अवधारणा है। इस प्रकार इसमें आधुनिक दर्शन शास्त्र, ब्रह्माण्ड शास्त्र, अन्तरिक्ष विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, जैव विकास आदि विषय भी सम्मिलित हैं। इस वैदिक इतिहास को प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ पुराण कहलाते हैं। यद्यपि पुराण नाम से प्रचलित अनेक पुस्तकों में तर्क विरुद्ध तथा भ्रम फैलाने वाली सामग्री भी मिलती है, जो विभिन्न मतों के लोगों ने अपनी बात को प्रामाणित करने के लिए समय-समय पर जोड़ दी है।

इस प्रकार जोड़ी गयी या प्रक्षिप्त सामग्री का पता लगाने का आधार भी पुराण में ही है। सभी पुराणों में बताया गया है कि पुराण के प्रमुख पांच लक्षण या विषय होते हैं। सबसे पहले तो केवल उन्हीं पुराण ग्रन्थों को स्वीकार किया जाए, जिनमें ये पांच लक्षण मिलते हों। फिर उन पांच लक्षणों के आधार पर अतिरिक्त सामग्री को अलग कर दिया जाना चाहिए। इस प्रकार पुराण का जो स्वरूप सामने आएगा, वही वास्तविक पुराण होगा। यह वास्तविक 'पुराण' ही वैदिक इतिहास है तथा सभी पुराणों में मिलने वाला समान अंश है।

पुराण के पाँच लक्षण 1. सर्ग या सृष्टि रचना, 2. प्रतिसर्ग या प्रलय 3. मन्वन्तर या काल विभाजन, 4. वंश अर्थात् राजाओं तथा ऋषियों की प्रमुख वंशावलियाँ तथा 5. वंशानुचरित या वंश के प्रमुख लोगों के कार्यों का वर्णन हैं। इतिहास के विषय में आधुनिक दृष्टिकोण के विचार से वंश तथा वंशानुचरित भागों में इतिहास की सामग्री है।

पुराणों के वंश वर्णन को दो भागों में बांटा गया है - 1. महाभारत युद्ध से पहले और महाभारत युद्ध के बाद। पहले भाग की वंशावली पूर्ण नहीं है तथा बीच के अनेक नाम छूट गये हैं। पुराण स्वयं कहते हैं कि हमने इस वंश के मुख्य-मुख्य राजाओं के नाम बता दिये हैं। अतः कुछ विद्वान उसे वंशावली न मानकर नामावली मानते हैं। दूसरे भाग की वंशावली सामान्यतः पूर्ण है तथा उनमें राजाओं के शासनकाल भी लिखे हैं। इस प्रकार पुराण की वंशावली को आधार बनाकर, विभिन्न ग्रन्थों से सामग्री लेकर तथा उसे यथा स्थान उपयोग करके सम्पूर्ण वैदिक इतिहास तैयार किया गया है।

महाकवि कलिदास ने अब से दो हजार वर्ष पहले अपने ऐतिहासिक महाकाव्य रघुवंश में उल्लेख किया है कि वैवस्वत् मनु ही राजाओं में प्रथम थे। मनु का वंश ही भारत का प्रथम राजवंश है। उसे ही बाद में इक्ष्वाकु वंश, रघुवंश भी कहा गया। मूलतः उसे सूर्यवंश कहा जाता है। विवस्वान् सूर्य मनु के पिता थे। वे राजा नहीं, ऋषि थे।

सौभाग्य से हमारा परिश्रम सफल रहा तथा वैवस्वत् मनु से गौतम बुद्ध तक प्राचीन वैदिक काल का इतिहास अनेक प्राचीन ग्रन्थों में बिखरा हुआ उपलब्ध हो गया। हमारे उस शोधकार्य को दैनिक जागरण के आगरा संस्करण ने जनवरी 1996 ई. से मार्च 1997 ई. तक 'काल प्रवाह' स्तम्भ के रूप में शनिवासरीय तथा सरगम साप्ताहिक परिशिष्ट में प्रकाशित किया है, हम उनके आभारी हैं। उसे पुस्तक के रूप में प्रकाशित करना किसी अच्छे प्रकाशक का ही कार्य है।

प्राचीन वैदिक इतिहास के मुख्य स्रोत पांच ग्रन्थ 1. वाल्मीकीय रामायण, 2. महाभारत, 3. रघुवंश, 4. राजतरंगिणी (कल्हण कृत) तथा 5. विभिन्न पुराण

हैं। पुराणों में विष्णु, भागवत्, वायु, मत्स्य आदि इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। पुराणों में सूर्यवंश, चन्द्रवंश, निमिवंश, कुरुवंश, यदुवंश आदि प्रमुख प्राचीन राजवंशों के विषय में पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री है। युगाब्द, कलि संवत्, युधिष्ठिर संवत् तथा विक्रम संवत् भी आधार स्तम्भ हैं। इसके आधार पर ही प्राचीन भारत का वैदिक कालीन इतिहास प्रस्तुत किया गया है। अब आवश्यकता है उसके प्रकाशन, प्रचार तथा प्रमाणित करने की। उसकी समालोचना-विवेचना की जाए, तार्किक शोध के आधार पर संशोधन किया जाए तो प्राचीन वैदिक इतिहास को मान्यता मिल ही जाएगी। पुरातत्व के आधार पर पुष्टि तथा संशोधन होना चाहिए, परन्तु जब तक उस तरह का कुछ न मिले, तब तक जो है, उसे पढ़ा और पढ़ाया जाना चाहिए। युधिष्ठिर का महल या सिक्का नहीं मिला तो इससे उनका अस्तित्व अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

प्राचीन वैदिक इतिहास में सूर्यवंश आधार स्तम्भ है। यही सबसे लम्बी वंशावली उपलब्ध है। उसमें क्रम 97 पर बृहद्बल का नाम है जो महाभारत युद्ध में अभिमन्यु द्वारा मारा गया था। अतः जलप्रलय से महाभारत तक लगभग सौ पीढ़ियों का इतिहास उपलब्ध है। कुल पीढ़ियाँ इससे कुछ ही अधिक हुईं या कई गुना अधिक हुईं, यह अभी केवल अनुमान का विषय है।

महाभारत के बाद पाण्डु वंश, सूर्यवंश तथा मगध के राजवंश प्रमुख रहे। गौतम बुद्ध तक मगध में 32 राजाओं ने क्रमशः शासन किया। सिद्धार्थ गौतम बुद्ध का जन्म 1215 युगाब्द में हुआ तथा देहावसान 1295 युगाब्द में हुआ।

युगाब्द को कलि संवत् या युधिष्ठिर संवत् भी कहते हैं। कुछ लोग मानते हैं कि युधिष्ठिर संवत् अलग है और युगाब्द से 36 वर्ष प्राचीन है। उनका मानना है कि भगवान कृष्ण के देहत्याग से युगाब्द प्रारम्भ हुआ तथा युधिष्ठिर के राज्याभिषेक से युधिष्ठिर संवत् चला। हो सकता है कि इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) की स्थापना के समय युधिष्ठिर संवत् प्रारम्भ हुआ हो तथा बाद में महाभारत युद्ध जीतने पर युगाब्द प्रारम्भ किया गया हो और उसे युधिष्ठिर संवत् भी कहा जाता हो।

विक्रमादित्य का जन्म युगाब्द 3000 में तथा राज्याभिषेक युगाब्द 3045

में हुआ। उनका अधिकार मगध, इन्द्रप्रस्थ तथा कौशाम्बी पर भी था। मगध में महाभारत के बाद युगाब्द के आरम्भ से विक्रमादित्य से पूर्व तक 3045 वर्षों में 9 राजवंशों के 100 से अधिक राजा शासन कर चुके थे।

इस प्रकार सूर्यवंश के आरम्भ से महाभारत तक क्रमागत 100 राजा तथा उसके बाद विक्रमादित्य तक पुनः क्रमागत 100 राजा हुए। उनमें मनु, भगीरथ, राम, युधिष्ठिर, चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक आदि विश्व प्रसिद्ध सम्राट सम्मिलित हैं। यह सम्पूर्ण इतिहास उपलब्ध है।

प्रमुख तिथिक्रम

1.	ब्रह्मा	- वेद प्राप्ति तथा संस्कृति का आरम्भ
2.	वैवस्वत् मनु	- जल प्रलय, सत्युग का आरम्भ
3.	हरिश्चन्द्र, परशुराम, विश्वामित्र	- सत्युग की समाप्ति, त्रेतायुग का आरम्भ
4.	वल्मीकि, राम	- त्रेतायुग का अन्त, द्वापर युग का आरम्भ
5.	कृष्ण	- द्वापर का अन्त, कलियुग का आरम्भ
6.	युधिष्ठिर	- महाभारत युद्ध, युगाब्ध प्रारम्भ (3102 ई. पू.)
7.	गौतम बुद्ध	- युगाब्द 1215 से 1295
8.	शंकराचार्य	- युगाब्द 2593 से 2625
9.	विक्रमादित्य का जन्म	- युगाब्द 3000 (102 ई. पू.)
10.	विक्रम संवत् का आरम्भ	- युगाब्द 3045 (57 ई. पू.)
11.	शालिवाहन शक	- युगाब्द 3180 (78 ई.)

ॐ

6. वैदिक योग साधना

वैदिक योग वास्तव में चेतना विज्ञान है। मन, आत्मा, परमात्मा का ज्ञान तथा अनुभूति इसका विषय है। इस साधना में शरीर को माध्यम बनाना होता है। अतः शारीरिक स्वास्थ्य भी इसका सहायक अंग बन गया । योग में शरीर के अतिरिक्त किसी अन्य साधना का उपयोग नहीं किया जाता है। यही योग विज्ञान तथा चिकित्सा विज्ञान के बीच मुख्य भेद है।

वैदिक षट्दर्शनों में योग दर्शन का जनसामान्य के लिए व्यावहारिक उपयोग सबसे व्यापक तथा महत्वपूर्ण है। वैदिक योग जीवन जीने की कला तथा सर्वोच्च मनोविज्ञान है। स्वस्थ शरीर, स्वच्छ मन, प्रज्ञा बुद्धि, आनन्दमय जीवन इसका स्वाभाविक परिणाम है। वैदिक योग मूलतः शरीर का नहीं, मन और आत्मा का विषय है। वह चेतना विज्ञान है, परमात्मा की प्राप्ति का साधन है, अलौकिक शक्तियों के विकास की साधना है। शरीर का स्वास्थ्य तो योग साधना में साधारण प्रारम्भिक पड़ाव मात्र है।

योग विज्ञान के व्यावहारिक दृष्टि से पांच भाग या अंग हैं। वैदिक योग साधना के लिए पांच प्रकार के साधन, अपनाये जाते हैं। इनको साधना के पांच अंग या पांच चरण भी कहा जा सकता है।

1. ज्ञान किसी भी कार्य का पहला चरण है। विषय का ज्ञान हुए बिना कोई सार्थक प्रयास संभव नहीं हो सकता है।

2. विज्ञान का अर्थ विशेष ज्ञान। जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसके कारण, मूल स्रोत, कार्यप्रणाली को समझना विज्ञान है। सूर्य में प्रकाश और ऊष्मा है, यह ज्ञान है। वह प्रकाश और ऊष्मा कैसे उत्पन्न होती है और हमें कैसे प्राप्त होती है, यह विज्ञान है।

3. कर्म का अर्थ है ज्ञान और विज्ञान को व्यवहार में लाना। ज्ञान-विज्ञान के अनुसार कर्म करना ही फलप्रद होता है।

4. उपासना का अर्थ है समीप होना। ज्ञान-विज्ञान, कर्म के बाद हम लक्ष्य के समीप जा सकते हैं। योग विज्ञान का लक्ष्य मन, आत्मा, परमात्मा है। इस विधि से साधना करके हम मन, आत्मा, परमात्मा की उपासना या समीपता अनुभव कर सकते हैं।

5. ज्ञान, विज्ञान, कर्म, उपासना के स्तर की साधना के बाद भक्ति अर्थात पूर्ण रूपेण आत्मीयता, एकता, प्रेम, श्रद्धा, समर्पण की भावना का विकास होता है। भक्ति इसके बाद ही सम्भव हो पाती है। इसके बिना सीधे भक्ति का भ्रम करना न उचित है और न सम्भव। कल्पना के सहारे कुछ मानना और श्रद्धा उत्पन्न करना भय और भ्रम हो सकता है, भक्ति नहीं। भक्ति का स्तर प्राप्त कर लेने पर सभी प्रकार के भ्रम दूर हो जाते है और व्यक्ति पूर्णतः निर्भय हो जाता है। उसे तो ईश्वर का भी भय नहीं शेष रह जाता है क्योंकि उसे ईश्वर की व्यवस्था, उसके न्याय तथा आत्मीयता पर पूर्ण विश्वास हो जाता है।

पञ्चांग योग साधना

शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य तथा चिकित्सा के क्षेत्र में योग का सफल तथा चमत्कारिक प्रयोग किया जा रहा है और विधिवत् योग चिकित्सा पद्धति का भी विकास हो गया है। चिकित्सा का साधन हो जाने पर योग की क्रियाओं में विस्तार भी बहुत हुआ। स्वास्थ्य तथा चिकित्सा में उपयोगी अनेक क्रियाएं योग में सम्मिलित कर ली गयीं। इससे स्वास्थ्य रक्षा में साधकों को बहुत लाभ मिला तथा योग को लोकप्रियता मिलने लगी। स्थान-स्थान पर योग केन्द्र खुलने लगे। यद्यपि उन केन्द्रों में योग विज्ञान तथा साधना पर ध्यान बहुत कम दिया जाता है, फिर भी योग की सामान्य जानकारी मिलती ही है।

वैदिक योग साधना के चिकित्सा पद्धति तक विकास को हम पांच चरणों में विभाजित कर सकते हैं। इस प्रकार विकसित हुए सम्पूर्ण योग को पांच चरण या अंग होने के आधार पर पंचांग योग कहा जा सकता है। ये अंग - 1. आत्म योग 2. राजयोग 3. हठ योग 4. पुष्टि योग 5. शोधन योग हैं।

प्रथम चरण आत्म योग मूल वैदिक योग साधना है। उसमें किसी प्रकार

का शारीरिक प्रयास नहीं है। मन को नियंत्रण में लाकर आत्मा को परमात्मा में लीन कर दिया जाता है। सम्पूर्ण योग साधना का लक्ष्य यही है। इसके पांच उपांग 1. प्रत्याहार 2. धारणा 3. ध्यान 4. समाधि तथा संयम हैं। द्वितीय चरण राजयोग में मन को नियंत्रित करने के लिए कुछ व्यावहारिक उपायों का समावेश किया गया है। उसके पांच उपांग 1. यम 2. नियम 3. आसन 4. प्राणायाम 5. मुद्रा हैं। तृतीय चरण हठ योग क्रिया प्रधान है तथा उसका आधार शरीर है। उसके पांच अंग 1. बन्ध 2. अग्निसार 3. नौलि 4. कपाल भाति तथा 5. वाटक हैं। चतुर्थ चरण पुष्टि योग की क्रियाओं में जीवन चर्या में सुधार तथा मिट्टी, जल, तेल आदि का प्रयोग शरीर की त्वचा पर करते हैं जिससे शरीर के आन्तरिक अंग भी सक्रिय तथा शक्तिशाली बनते हैं। उसके पांच अंग 1. चर्या 2. व्यायाम 3.स्नान 4. मर्दन 5. लेपन हैं। शोधन योग में जल आदि का प्रयोग आन्तरिक अंगों की सफाई के लिए किया जाता है। उसके पांच अंग 1. नेति 2. धौति 3. वास्ति 4. शंख 5. स्वेदन हैं। इन 25 अंगों के अन्तर्गत अनेक क्रियाएं तथा विधियाँ हैं। उनको किसी योग शिक्षिक से ही सीखना चाहिए।

1. आत्म योग

योग विज्ञान को स्पष्ट परिभाषित तथा व्यवस्थित करना आवश्यक है। वैदिक योग साधना को मूल योग या आत्म योग कहा जा सकता है। यही वास्तविक योग साधना है तथा बाद में विकसित अन्य सभी योग प्रणालियों का भी अभीष्ट है, लक्ष्य है। मूल योग में बाह्य जगत् के किसी भी साधना का उपयोग नही किया जाता है। योग साधना की सर्वोच्च अवस्था समाधि में शरीर का भी भान या अनुभव शेष नहीं रह जाता है। श्वांस-प्रश्वास के प्रति भी कोई प्रयास या अनुभूति शेष नहीं रह जाती है। आत्मा योग में शरीर का भी कोई उपयोग नहीं है। केवल मन, आत्मा, परमात्मा ही साध्य हैं और साधन भी।

मन और शरीर एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। मन की अवस्था का प्रभाव शरीर पर पड़ता है तथा शरीर की अवस्था का प्रभाव मन पर भी पड़ता है। यदि मन विकार ग्रस्त है तो शरीर स्वस्थ नहीं रह सकता है तथा शरीर रोगी है तो मन भी स्वस्थ प्रफुल्लित नहीं रह सकता है। योग साधक अपने मन पर पूर्ण

नियंत्रण प्राप्त कर लेता है। वह मन की संकल्प शक्ति के द्वारा ही शरीर को विकार मुक्त करके स्वस्थ रह सकता है। आधुनिक विद्वान इसे परामनोविज्ञान कहते है। मन ही मनुष्यों के बन्धन तथा मोक्ष का कारण है- मन एव मनुष्याणाम् कारणम् बन्ध-मोक्षयोः। अतः योग साधना में मन पर नियंत्रण प्राप्त करके शरीर पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है। इस प्रकार बिना किसी बाहरी साधन या प्रयास के ही योगी अपने शरीर को स्वस्थ रख सकता है। चित्त की वृत्तियों का विरोध करना, पराचेतना के साथ एकाकार होकर तादात्म्य हो जाना ही योग है। यही योग की सर्वोच्च अवस्था परम योग, परम लक्ष्य आत्मयोग है। इससे प्रकृति पर भी नियंत्रण किया जा सकता है। इस विद्या को परा प्रकृति विज्ञान कहते हैं।

महर्षि पतंजलि की साधना प्रणाली के आधार पर आत्म योग के पांच अंग या चरण माने जा सकते हैं। वेद में योग का वर्णन है। उसी वैदिक योग को सरलता से समझने के लिए पाँच चरणों में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

1. प्रत्याहार 2. धारणा 3. ध्यान 4. समाधि 5. संयम

इनमें प्रत्याहार धारणा तथा ध्यान की सैकड़ों विधियाँ प्रचलित हैं। सभी का लक्ष्य समाधि या उस स्थिति को प्राप्त करना है जिसमें चित्तवृत्तियों का विरोध होकर शून्य की स्थिति को अनुभव कर लेते हैं। वही परम आनन्द की अवस्था है तथा अलौकिक शक्तियों का उद्गम है।

आत्म योग साधना

वैदिक योग साधना मन के नियंत्रण से ही प्रारम्भ होती है। इसे पांच चरणों में पूर्ण कर सकते हैं।

1. प्रत्याहार में मन बाहरी विषयों से खींचकर अलग करते हैं।

2. धारणा में किसी एक स्थान पर मन को स्थिर करने का प्रयास करते हैं।

3. ध्यान में मन एक स्थान पर कुछ समय के लिए स्थिर हो जाता है। इस अवस्था में साधक को अपना, ध्येय बिन्दु तथा ध्यान करने का ज्ञान बना

रहता है।

4. समाधि (सम्+आ+अधि तथा सम+अधि) का अर्थ है सम्यक् रूप से, भली भांति और समान रूप से प्राप्त हो जाना। इस अवस्था में ध्याता या साधक को अपना, ध्येय बिन्दु तथा ध्यान करने का ज्ञान नहीं रहता है। साधक पूरी तरह परमात्मा में लीन और इसके साथ एकाकार हो जाता है।

5. संयम मे धारणा, ध्यान और समाधि की अवस्थाएं एक ही बिन्दु पर प्राप्त हो जाती हैं। जिस वस्तु, स्थान या व्यक्ति पर इस प्रकार संयम किया जाता है, उसके विषय में सम्पूर्ण ज्ञान साधक को प्रत्यक्ष की भांति हो जाता है। यही योग साधना है, यही उसकी सिद्धि है।

शिव योग :- शिव शब्द का अर्थ है कल्याणकारी। सबके लिए उपयुक्त, सरल तथा कल्याणकारी विधि से आत्मयोग की साधना ही शिव योग है।

1. शैथिल्य या शिथिलीकरण योग में शरीर और मन को पूरी तरह से ढीला छोड़ देते हैं।

2. विदेह योग में अनुभूति करते हैं कि शरीर का यह अंग विशेष और फिर धीरे-धीरे पूरा शरीर मेरा नहीं है और वायु की भांति हल्का हो गया है।

3. तटस्थ योग में शरीर की क्रियाओं और संवेदनाओं को साक्षी भाव से देखते हैं तथा स्वयं को उससे निरपेक्ष रखते हैं।

4. पथिक योग में पूरे शरीर की या श्वांस की मात्रा में मन को लगा देते हैं या पूरी तरह जागरूक रहते हैं।

5. विस्पन्दन योग में हृदय या नाभि जैसे प्राकृतिक विस्पन्दन के साथ मन को जागरूक होकर लगा देते हैं।

2. प्राणयोग - पातंजलि योग

राजयोग को सामान्यतः महर्षि पतंजलि द्वारा बतायी गयी योग प्रणाली के रूप में ही माना जाता है। योग सूत्र या योग दर्शन में पतंजलि ने योग साधना की व्यवस्थित प्रणाली बतायी है। सामान्यतः उसे अष्टांग योग कहा जाता है। उसमें योग के आठ अंग 1. यम 2. नियम 3. आसन 4. प्राणायाम 5.प्रत्याहार

6. धारणा 7. ध्यान 8.समाधि तथा त्रयमेकत्र संयमः सूत्र में 9 वाँ अंग संयम बताया गया है। यहाँ पर धारणा, ध्यान, समाधि को एक साथ एक बिन्दु पर सिद्ध करने को संयम कहा गया है। इसके साथ ही यह भी स्पष्ट है कि साधना के समय हाथों को भी किसी मुद्रा में तो रखा ही जाएगा। अतः मुद्रा को भी राज योग का अंग माना ही जाएगा। इस प्रकार पातंजलि राजयोग के दस अंग हो जाते हैं।

इसमें पांच अंग 1. प्रत्याहार 2. धारणा 3. ध्यान 4. समाधि 5. संयम आत्मा योग या मूल वैदिक योग साधना ही हैं।

राजयोग के पांच अंग इस प्रकार हैं।

1. यम 2. नियम 3. आसन 4. प्राणायाम 5. ओ3म् ध्वनि

सामान्यतः यम तथा नियम पांच- पांच माने जाते हैं। आसन प्राणायाम तथा मुद्राएं बहुत बड़ी संख्या में प्रचलित हैं। उनके स्वास्थय सम्बन्धी स्थूल लाभ भी हैं। पांच यम 1. अहिंसा 2. सत्य 3. अस्तेय (चोरी न करना) 4. ब्रह्मचर्य (ब्रह्मप्राप्ति के अनुकूल चर्या) 5. ऊपरिग्रह (आवश्यकता से अधिक न संग्रह न करना) है।

पांच नियम 1. शौच 2.सन्तोष 3. तप 4. स्वाध्याय 5. ईश्वर प्रणिधान हैं। आसन का अर्थ है शरीर की वह स्थिति जिसमें स्थिर होकर सुखपूर्वक लम्बे समय तक बैठा जा सके स्थिर सुखमासनम् ।

प्राणयोगः- मन तथा शरीर को योग साधना के लिए तैयार करने का अभ्यास राजयोग है।

1. यम पांच हैं - 1. अहिंसा अर्थात् किसी को दुःख न देना 2. सत्य का पालन, कम से कम मिथ्या या झूठ से बचे रहना 3. अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना 4. ब्रह्मचर्य अथार्त् वेद के अनुकूल आचरण करना 5. ऊपरिग्रह अर्थात् आवश्यकता से अधिक संग्रह न करना।

2. नियम भी पांच हैः- 1. शौच (पवित्रता) 2. सन्तोष 3. तप (कष्ट से विचलित न होना) 4. स्वाध्याय अर्थात् वेद का अध्ययन तथा आत्मचिन्तन करना 5. प्राणधान अर्थात् पहले सीखने के समय गुरू के प्रति तथा साधना में

लग जाने पर उससे भी अधिक परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पण तथा भक्ति।

3. आसन का अर्थ है सुख पूर्वक स्थिर होकर बैठने का अभ्यास करना।

4. प्राणायाम का अर्थ है प्राण शक्ति का विस्तार करना। स्थूल रूप में श्वांन- प्रश्वांस पर नियंत्रण के रूप में इसका अभ्यास प्रारम्भ करते हैं।

5. मुद्रा का अर्थ है मन तथा शरीर की अवस्था, विशेष रूप से हाथों की स्थिति। साधक की मुद्रा धीर-गम्भीर और प्रफुल्लित होनी चाहिए तथा हाथों को सुविधा, स्वभाव तथा अभ्यास के अनुकूल रखना चाहिए। इन सभी क्रियाओं के अनेक स्वरूप तथा विधियाँ प्रचलित हैं।

3. हठ योग - नाथ योग

शरीर को स्वस्थ रखने की क्रियाओं को हठयोग कहते हैं। हठ योग शरीरिक स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी है। इसका अभ्यास धीरे-धीरे सावधानी पूर्वक तथा सुयोग्य, आध्यात्मिक वैदिक योग प्रशिक्षक केमार्ग दर्शन में ही करना चाहिए। सम्पूर्ण वैदिक योग विज्ञान तथा वेद विज्ञान सहित किसी भी विद्या और साधना के लिए मार्गदर्शक गुरु का विशेष महत्व है।

हठयोग की साधना क्रिया प्रधान तथा शरीर प्रधान है। राजयोग की क्रियाओं में मन तथा भावना ही प्रमुख है। उसका कार्यक्षेत्र चेतना ही है। हठयोग में शरीर को स्वस्थ रखने के लिए विभिन्न क्रियाएं की जाती हैं। इन क्रियाओं से शक्ति बढ़ती है, शरीर के विकार दूर होते हैं तथा स्वास्थ्य अच्छा रहता है। इन क्रियाओं का माध्यम भी हमारा शरीर ही है। हठ योग का विकास नाथ पंथ के योगियों ने किया था। इसीलिए यहाँ पर इसे नाथयोग भी कहा गया है।

हठयोग के पांच अंग इस प्रकार हैं।

1. त्राटक 2. कपाल भाति 3. बन्ध 4. अग्निसार 5. नौलि।

त्राटक में किसी बिन्दु को देर तक एकटक देखने का अभ्यास करते हैं। कपाल भाति तीव्र गति से की जानी श्वांस क्रिया की विशेष विधि है।

बन्ध का अर्थ है बांधना या रोकना। बन्ध पांच प्रकार के होते हैं - 1. मूल बन्ध या गुदा बन्ध 2. उपस्थ या शिश्न बन्ध 3. उदर बन्ध या उड्डियान बन्ध

4. कण्ठ बन्ध या जालंधर बन्ध 5. पूर्ण बन्ध या महाबन्ध में सभी चार बन्ध एक साथ किये जाते हैं। अग्निसार में पेट की वायु को मुँह से अधिकतम निकाल देते हैं।

नौलि हठयोग की सर्वोच्च क्रिया है तथा कठिन भी। परन्तु नयी विधियों से अब सबके लिए नौलि सिद्ध करना सरल हो गया है। इस विधि से इसका अभ्यास पांच चरणों में पूर्ण होता है। नौलि क्रिया के पांच चरण या अंग है- 1. उपनौलि 2. दक्षिण-वाम नौलि 3. मध्य नौलि 4. गोल नौलि 5. पूर्ण सिद्ध नौलि।

इन सभी क्रियाओं की अनेक विधियाँ या रूप प्रचलित हैं। प्राचीन काल में ये क्रियाएं बहुत कठिन मानी जाती थीं तथा कुछ कठिन अभ्यासी सिद्ध योगी ही उन्हें कर पाते थे। आधुनिक काल के सिद्ध हठयोगियों ने इन सभी की बहुत सरल विधियाँ विकसित करके जनसाधारण के लिए इन क्रियाओं को सहज सुलभ बना दिया है। उनकी विधियों का उपयोग करके लाखों लोग अब इन क्रियाओं का लाभ उठा रहे हैं। हमारे जैसे हजारो लोगों ने योग का प्रशिक्षण प्राप्त किया है तथा देश- विदेश में जन साधारण को योग विद्या का प्रकाश बांट रहे हैं।

हठयोग की इन क्रियाओं को किसी योग शिक्षक के मार्गदर्शन में सीखना चाहिए। प्रतिदिन आधा घण्टा इन क्रियाओं का अभ्यास करते रहने से स्वास्थ्य ठीक रहता है तथा शरीर में स्फूर्ति बनी रहती है। इन क्रियाओं के अभ्यास से रोगों की रोकथाम की जा सकती है। तीव्र रोग की अवस्था में इनका अभ्यास कठिन होता है तथा कुछ रोगों में हानिकारक भी हो सकता है। अतः रोगी इनका अभ्यास योग शिक्षक से पूछकर ही करें। त्राटक आंखों के लिए, कपालभाति मस्तिष्क के लिए, बन्ध अन्तःस्त्रावी ग्रन्थिओं के लिए तथा अग्निसार एवम् नौलि पाचन तथा निष्कासन संस्थान के लिए उपयोगी हैं। इनका अभ्यास धैर्य पूर्वक धीरे - धीरे करना चाहिए तथा जल्दी ही क्रियाओं में सिद्धि का प्रयास नहीं करना चाहिए।

4. शोधन योग

नाथ पंथ के हठयोगी जल, वायु, सूर्य, सूत्र, वस्त्र आदि सहज उपलब्ध साधनों की सहायता से शरीर को विकार मुक्त तथा रोग मुक्त करने के लिए कुछ क्रियाओं का प्रयोग करते थे। उद्‌देश्य तथा साधन दोनों ही आधारों को ध्यान में रखते हुए हमने शोधन क्रियाओं को हठ योग से अलग स्वतंत्र रूप में माना है। शोधन योग में बाह्य साधनों जल आदि को पहली बार स्पष्टतः स्वीकार किया गया है। इससे पूर्व आत्मयोग, राजयोग तथा हठयोग में किसी बाहरी साधन की आवश्यकता नहीं थी। शोधन योग की क्रियाओं मे जल आदि का प्रयोग करके शरीर के आन्तरिक अंगों की सफाई की जाती है।

शोधन योग के पांच अंग इस प्रकार हैं -

1. नेति 2. धौति 3. वस्ति 4. शंख प्रक्षालन 5. स्वेदन

ये क्रियाएं प्राचीन काल में बहुत कठिन थीं परन्तु आधुनिक यंत्रों के विकास से बहुत सरल हो गयी हैं। यद्यपि अभी भी कुछ रूढ़िवादी लोग प्राचीन विधियों की ही बात करना चाहते हैं लेकिन उस तरीके का उपयोग करना स्वयं उनके लिए भी सम्भव नहीं है। सूत्र नेति के स्थान पर रबर नेति का प्रयोग सुविधाजनक है। बांस की नली को गुदा में प्रवेश कराकर वास्ति क्रिया तालाब में करना अब बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती हैं। रबर की नली की सहायता से छोटे बच्चे तथा वृद्ध भी वस्ति क्रिया का लाभ उठा सकते हैं। शंख प्रक्षालन में अनेक कठिन आसन करने की अपेक्षा सरलता से मेरूदण्ड के व्यायाम कर लेना बहुत सरल है। इससे शंख प्रक्षालन जैसी क्रिया भी बहुत सरल तथा लोकप्रिय हो गयी है।

शोधन क्रियाओं को प्रतिदिन करने की आवश्यकता नहीं होती है। ये क्रियाएं अपेक्षाकृत कठिन तथा कष्टकर भी है। इनका कार्य शरीर से विकारों को निकालना है। अतः शरीर में विकार एकत्र होने पर या समय - समय पर इनका अभ्यास कर लेने से शरीर में विकार एकत्र होकर सड़ने नहीं पाते हैं और रोग नहीं आ पाते हैं। ये शोधन क्रियाएं अप्राकृतिक प्रयोग हैं, यह स्वीकार करने में हमें कोई संकोच नहीं होना चाहिए। अतः इनका उपयोग चिकित्सात्मक है,

साधनात्मक नहीं। रोगी यदि इन क्रियाओं का अभ्यास अपने योग शिक्षक के निर्देशन में करे तो लाभ हो सकता है। अशक्त रोगी कभी-कभी इन क्रियाओं को करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं। ऐसी स्थिति में पुष्टि योग की क्रियाएं विभिन्न प्रकार के स्नान, लेपन, घर्षण या गर्दन आदि उपयोगी हो सकते हैं। प्राकृतिक वनौषधियों तथा आयुर्वेद का सहयोग लेना भी हितकर होता है।

5. वैदिक स्वास्थ्य रक्षा योग

वैदिक जीवन शैली अपना लेने पर चिकित्सा की आवश्यकता बहुत कम होती है। बाहरी वातावरण तथा विशेष परिस्थितियों के कारण होने वाले सामान्य कष्टों का उपचार भी थोड़ी-सी जागरूकता से ही हो सकता है। यही जागरूकता तथा सावधानी वैदिक स्वास्थ्य रक्षा उपचार पद्धति है। इसका ज्ञान तथा अभ्यास होने से अपना, अपने परिवार तथा मित्रों की स्वास्थ्य रक्षा सरलता से की जा सकती है।

वैदिक स्वास्थ्य रक्षा पद्धति से कुछ असाध्य समझे जाने वाले रोगों को दूर करने में भी सफलता मिल जाती है तथा कभी - कभी सुयोग्य चिकित्सक भी अपने परिवार के लिए इसका उपयोग करते हैं। हमें समझना चाहिए कि कोई भी चिकित्सा पद्धति पूर्ण नहीं है तथा सभी की अपनी सीमाएं हैं। अतः वैदिक स्वास्थ्य उपचार को सफलताएं मिलने पर भी अहंकार नहीं पालना चाहिए और न किसी चिकित्सा पद्धति की निन्दा करनी चाहिए। कठिन तथा तीव्र रोगों में सुयोग्य प्रशिक्षित तथा अनुभवी चिकित्सक का मार्गदर्शन लेना चाहिए।

आयुर्वेद चिकित्सा निरापद, हानिरहित, सरल तथा प्रभावशाली है। परन्तु साधनों के अभाव में आयुर्वेद चिकित्सालयों में आवश्यक सुविधाओं तथा उपकरणों का अभाव रहता है। अतः जटिल रोगों में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान एलोपैथी का उपयोग करने में कोई संकोच नहीं करना चाहिए। किसी भी पद्धति में कम से कम चिकित्सा स्नातक उपाधि (मेडिकल ग्रेजुएट डिग्री) रखने वाले चिकित्सक से ही चिकित्सा करानी चाहिए। अप्रशिक्षित लोग बड़ी संख्या में स्वयं को चिकित्सक या डॉक्टर कहते है और प्राकृतिक चिकित्सा सहित

विभिन्न पद्धतियों से सभी रोगों की चिकित्सा करने का दावा करते हैं। ऐसे नकली चिकित्सकों से बचना चाहिए। अपवाद स्वरूप कुछ साधक योग के माध्यम से सफल उपचार करते हैं। उनकी वेद-विद्या में योग्यता, स्वभाव, सेवा-भावना तथा साधना के विषय में जानकारी होने पर लाभ उठा सकते हैं। वैदिक मन्त्र चिकित्सा से लाभ अवश्य होता है तथा किसी हानि की कोई सम्भावना नहीं रहती है। इसमें साधना तथा स्वाध्याय ही महत्वपूर्ण योग्यता है।

वैदिक स्वास्थ्य रक्षा उपचार पद्धति चिकित्सा करने का दावा नहीं करती है। अतः ऐसे उपचार के लिए किसी प्रमाणपत्र या पंजीकरण की आवश्यकता नहीं है। वैदिक उपचार पद्धति के पांच प्रमुख अंग हैं।

1. आहार :- जीवन और स्वास्थ्य का आधार है आहार। जो कुछ हम ग्रहण करते हैं, वह सब कुछ आहार मे सम्मिलित है। भोजन, जल, वायु, ज्ञान तथा चिन्तन पांच प्रमुख आहार हैं। इसका व्यक्ति विशेष की आवश्यकता तथा उपयोगिता के आधार पर किया जाना चाहिए। इसका निर्णय पांच दृष्टियों से करना चाहिए। 1. रुचि 2. सुलभता 3.पाचन 4. पोषण 5. निष्कासन। जो आहार रुचिकर हो, सरलता से सुलभ हो, जिसका पाचन हो सके, जो शरीर का पोषण करे तथा शेष मल का निष्कासन सरलता से हो जाए, वही आहार उचित है।

2. वनौषधि :- प्राकृतिक वनस्पति - वनौषधियों में अनेक रोग-निवारक गुण होते हैं। वेद मंत्रों में यह बात प्रमुखता से कही गयी है। वेद में अनेक स्थानों पर अन्न आदि भोजन, वायु, जल, ज्ञान, चिन्तन आदि सभी प्रकार के आहार की प्रशंसा तथा गुणों का वर्णन किया गया है। वनौषधियों के सभी पांच अंग औषधि के रूप मे प्रयोग होते हैं - 1. मूल 2. शाख 3.पर्ण (पत्ते) 4. पुष्प 5. फल। किस वनस्पति के किस अंग में क्या गुण हैं, इसका ज्ञान होकर प्राकृतिक आहार के रूप में उनका उपयोग रोग-निवारण में कर सकते हैं। प्राकृतिक आहार होने के कारण इनका प्रयोग लाभदायक तथा हानि रहित है।

3. पुष्टि क्रिया :- दिनचर्या में जागरूकता तथा परिवर्तन लाकर शरीर

के विभिन्न अंगों की शक्ति तथा कार्य क्षमता बढ़ायी जा सकती है और निर्बलता दूर की जा सकती है। इस उपाय से साधारण कष्टों का उपचार भी किया जा सकता है।

इसके पांच अंग 1. चर्या के अन्तर्गत निद्रा तथा विभिन्न कार्यक्रमों को अपने शरीर और मन की स्थिति के अनुकूल व्यवस्थित करना 2. व्यायाम का चयन अपने अनुकूल करना 3. स्नान की विभिन्न विधियों का आवश्यकता के अनुसार प्रयोग करना 4. भर्दन या माचिश की उचित विधि अपनाकर स्वास्थ्य लाभ करना 5. लेपन का प्रयोग करके शरीर के आन्तरिक अंगों को लाभ पहुँचाना तथा रोग दूर करने में सहायता करना हैं। लेपन में सामान्यतः विभिन्न तरीकों से मिट्टी तथा वनस्पतियों का प्रयोग करते हैं। चुम्बक तथा मर्म दाब (एक्यूप्रेशर) के प्रयोग भी इसी के अन्तर्गत माने जाने चाहिए। लेपन भी एक प्रकार से स्पर्श ही है तथा चुम्बक आदि का स्पर्श लेपन ही होता है।

4. शोधन :- शरीर में अधिक विकार एकत्र हो जाने पर रोगों की सम्भावना बढ़ जाती है। शरीर के भीतर से विकार को निकालने का उपाय शोधन है। इसके पांच अंग- 1. नेति 2. धौति 3. वस्ति 4. शंख- प्रक्षालन 5. स्वेदन हैं। ये अप्राकृतिक क्रियाएं हैं तथा इनका प्रयोग तभी करना चाहिए जब स्वाभाविक विकार निष्कासन न हो सके। इन उपायों को अनुभवी प्रशिक्षक से ही सीखना चाहिए तथा मार्गदर्शन में ही करना चाहिए। गलत तरीके से तथा अनावश्यक रूप में इनका प्रयोग करने से हानि भी हो सकती है।

5. प्रकृति :- वैदिक स्वास्थ्य उपचार पूर्णतः प्राकृतिक ही है। यहाँ प्रकृति का अर्थ है जड़ प्राकृतिक पदार्थ 1. प्रथिव्य (मिट्टी, चुम्बक आदि), 2. जल 3. तेज (अग्नि, प्रकाश, विद्युत, चुम्बकत्व आदि ऊर्जा शक्तियाँ), 4. वायु 5. आकाश।

वैदिक उपचार, योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा का आधार यही प्रकृति है। प्रकृति के तत्वों को यथा सम्भव प्राकृतिक रूप में प्रयोग करना ही वैदिक उपचार है। अतः इसमें हानि की सम्भावना नहीं रहती है।

पुष्टि योग : प्रकृति योग अथवा प्राकृतिक चिकित्सा

प्राकृतिक जीवन शैली तथा स्वास्थ्य के अनुकूल आहार-विहार अपनाकर शरीर को विकार मुक्त तथा रोग मुक्त करके सशक्त बनाने तथा पुष्ट करने वाली क्रियाओं को हम प्रकृति योग या पुष्टि योग कह सकते हैं। इसमें सामान्यतः प्राकृतिक तत्वों मिट्टी, पानी, सूर्य किरणें तथा वायु का प्रयोग किया जाता है। इसे पश्चिमी देशों में प्राकृतिक चिकित्सा कहा जाता है। पुष्टि योग में हमने उन क्रियाओं को रखा है जिनका उद्देश्य आन्तरिक अंगों की स्वच्छता से आगे बढ़कर उन्हें शक्तिशाली बनाना है। इनमें मिट्टी, पानी आदि के प्रयोग शरीर के बाहरी भाग त्वचा पर ही किये जाते हैं, भीतर प्रवेश नहीं कराते हैं। इन क्रियाओं से शरीर के अंगों में सक्रियता तथा शक्ति बढ़ती है तथा विकार निष्कासन सहित उनकी विभिन्न कार्य क्षमताएं बढ़ जातीं हैं।

इन क्रियाओं के विस्तार तथा विकास में प्राकृतिक चिकित्सकों का योगदान रहा है। आहार-विहार या चर्या का रोग के अनुसार विवेचन, व्यायामों का विकास तथा वर्गीकरण, स्नान की अनेक विधियों की खोज, मर्दन या मालिश के विविध तरीके तथा मिट्टी के विविध प्रयोग भी सराहनीय उपलब्धियाँ हैं। शोधन योग की अपेक्षा ये क्रियाएं अधिक सरल तथा उपयोगी बन गयी हैं। हम इनका दैनिक उपयोग कर लाभ उठा सकते हैं। इस दृष्टि से बहिः योग को शोधन से पहले स्थान दिया जाना चाहिए।

पुष्टि योग के पांच प्रमुख अंग इस प्रकार हैं-

1. चर्या (आहार- विहार) 2. व्यायाम 3. मर्दन (मालिश) 4. स्नान 5. लेपन

योग तथा प्राकृतिक चिकित्सा मूलतः एक ही हैं

वैदिक योग साधना का क्रमिक विकास सूक्ष्म से स्थूल की ओर हुआ है। आत्मा को परमात्मा के साथ एकाकार कर देने की सूक्ष्म ध्यान साधना में आसन-प्राणायाम को जोड़ने तथा उनके विविध रूपों की खोज से योग विज्ञान का विस्तार प्रारम्भ हुआ जो अन्ततः हठ योगियों की क्रियाओं तथा मिट्टी-पानी के विभिन्न प्रयोगों तक पहुँच गया। इसी के बीच में एक पड़ाव को कुछ लोगों

ने प्राकृतिक चिकित्सा का नाम दे दिया है। योग तथा प्राकृतिक चिकित्सा की अब तक ऐसी कोई परिभाषा सामने नहीं आयी है जिसमे दोनों के बीच स्पष्ट अन्तर किया जा सके। योगी मत्स्येनद्र नाथ करते थे तो योग और लुई को करते थे तो प्राकृतिक चिकित्सा माना जाए, इस परिभाषा या विभाजन को विवेक पूर्ण तो नहीं ही कहा जा सकता है। इसीलिए पंचाग योग में योग तथा शोधन के अन्तर्गत ही है।

प्राकृतिक चिकित्सा के बीज हठयोग में स्पष्ट देखे जा सकते हैं। उसकी शोधन क्रियाएं नेति, वस्ति, कुंजर, शंख प्रक्षालन जल चिकित्सा केही प्रयोग हैं। इनका अभ्यास दो हजार वर्ष पहले भी नाथ सम्प्रदाय के भारतीय योगी किया करते थे। विविध प्राणायामों के अतिरिक्त वायु चिकित्सा में है ही क्या? धूप स्नान सीखने के लिए क्या भारतीय योगियों को यूरोपीय प्राकृतिक चिकित्सक के पास जाना पड़ेगा? जल स्नान, वायुसेवन, मर्दन (मालिश) क्रियाओं को भारतीय योगी नहीं करते थे, ऐसा तो कोई नहीं कह सकेगा। नदियों की मिट्टी तथा बालू में लोटना तथा धूल- मिट्टी शरीर में लगाना तो योगियों की परम्परा है। स्नान तथा मिट्टी लगाने के नये तरीके खोजना सराहनीय तो है, परन्तु इससे वह योग से अलग नयी विद्या कैसे हो जाएगी?

प्राकृतिक जीवन के नाम पर मनुष्य को कुत्ता तथा सुअर की तरह का केवल पशु मानना तथा उनसे प्रेरणा लेकर उन पशुओं की तरह जीवन जीने का प्रयास करना निश्चित रूप से योग में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। प्राकृतिक चिकित्सक यदि पशुओं के जीवन को अपनी प्रेरणा तथा पशुवाद को अपना जीवन दर्शन मानते हैं तो उन्हें इसका अधिकार है। योग दर्शन में प्रज्ञा, विवेक तथा विचार शक्ति मनुष्य का परिचय है। हमारा लक्ष्य देवत्व है, ईश्वरत्व है, पशुत्व नहीं। पशु से प्रभु बनने का प्रयास, मनुष्य में देवत्व का उदय तथा वैदिक देव संस्कृति की स्थापना ही हमारा अभीष्ट है। योग साधना से परमात्मा मिल सकता है, पशुता तक पहुँचना स्वीकार्य नहीं है।

योग और अध्यात्म

अध्यात्म पूर्ण रूपेण एक विज्ञान है, चेतना विज्ञान। विश्व ब्रह्माण्ड में दो

तरह की सत्ताएं विद्यमान हैं, जड़ भौतिक पदार्थ और शुद्ध चेतन तत्व। दोनों का सार्थक संयोग ही जीवन है। इसे एक प्रकार का त्रैत सिद्धान्त अर्थात् तीन सत्ताओं को स्वीकार करने वाला सिद्धान्त कहा जा सकता है। किन्तु भौतिक पदार्थ, जीवन और चेतना को स्वतंत्र, निरपेक्ष व अनादि नहीं माना जाना चाहिए। इन सबका मूल तो अनादि परम चेतन सत्ता ही है। उसे ब्रह्म, परमात्मा, महाभूत, मूल प्रकति आदि किसी भी नाम से जाना जा सकता है और व्यावहारिक सुविधा के लिए ओम्, अल्लाह, खुदा, गॉड, परमेश्वर आदि कुछ भी पुकारा जा सकता है। जड़ भूत व जीवन भी उसी के विभिन्न रूप हैं।

जीवन में जड़ भौतिक पदार्थ या जड़भूत का ही अंश अधिक है। प्रारम्भिक अविकसित व निम्नतर सरल जीवों मे तो जड़भूत और भी प्रधान है। मानव जैसे अति विकसित जीव में चेतना का अंश अपेक्षाकृत अधिक है। चिंतन तथा अनुभूति चेतना के ही गुण हैं। मनुष्य के विकास में यही गुण सर्वाधिक मूल्यवान हैं। इन्हीं गुणों के कारण मनुष्य के विकास की अनन्त संभावनाएं है। सिद्धान्त रूप में मानव के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। मानव को जीवन के अवयव के रूप में जड़भूत तथा चेतन तत्व को इच्छानुसार विकसित करने का अवसर या अधिकार भी प्राप्त है!

योग वास्तव में जीवन में चेतना का अंश बढ़ाने की प्रकिया या साधन है। यह वैसा ही है जैसे शरीर पोषण भोजन-व्यायाम जड़भूत तत्व को बढ़ाने का साधन है। योग न कोई चमत्कार है और न ही कोई पारलौकिक वरदान। यह मानव मात्र को सुलभ और उपयोगी एक प्रविधि या तकनीक है जिसे कोई भी सीख सकता है, अपना सकता है और लाभ उठा सकता है।

यहाँ कुछ भ्रमों पर स्पष्टीकरण भी आवश्यक है, इधर योग को कुछ लोगों ने धर्म से और अन्य लोगों ने व्यायाम से जोड़ने का प्रयास किया है। अतः यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि योग का सम्बन्ध न स्वास्थ्य व्यायाम से है और न ही धर्म सम्प्रदाय से। धर्म देश-काल के अनुसार बनाया गया नीतिशास्त्र है और आवश्यकतानुसार उस में परिवर्तन होता रहता है। व्यायाम पूर्णतः अलग विषय है जिसका सम्बन्ध शारीरिक स्वास्थ्य से है।

धर्म देश-काल और सामाजिक संरचना व आवश्यताओं के अनुसार भिन्न होता है। परन्तु अध्यात्म और योग सभी के लिए समान हैं। इन पर देश-काल समाजिक संरचना व मान्यताओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यदि कोई व्यक्ति किसी विशेष मान्यता के कारण किसी औषधि का उपयोग नहीं करता तो इसका इतना ही प्रभाव होगा कि वह उस औषधि के लाभ से वंचित रहेगा। योग के विषय में भी इतना ही कहा जा सकता है।

योग का अर्थ

योग का शाब्दिक अर्थ है जोड़ना। अध्यात्म में जीव चेतना आत्मा को परमचेतना परमात्मा से जोड़ना ही योग कहा जाता है। अष्टांग योग आठ चरणों में बतायी गयी प्रकिया है जिसे अपना कर इस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। मुख्य बात है अपनी चेतना को जड़ भूत प्रकृति की अनुभूति से मुक्त कर लेना। ऐसा हो जाने पर ही परमचेतना की अनुभूति संभव है और उसके साथ योग अर्थात् जुड़ना हो सकता है। इसके लिए धैर्य पूर्वक साधना और यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि, इन आठ चरणों को पार करना आवश्यक है। इस प्रक्रिया को संक्षिप्त करना अथवा सरलीकरण, यदि संभव हो, तो किसी को आपत्ति नहीं हो सकती है, किन्तु अभी तक ऐसी कोई विधि विकसित नहीं की जा सकी है। वर्तमान समय में, जब भीषण भौतिक परिस्थितियों के बीच रहना बाध्यता है और वास्तविक योगी ही दुर्लभ हैं, तो किसी शार्ट कट की खोज की आशा व्यर्थ है। इस समय शार्ट किट का दावा यदि कोई करता है तो वह धोखा या ढोंग के अतिरिक्त कुछ हो ही नहीं सकता है। नटों की तरह शरीर को तोड़ना मरोड़ना या शारीरिक स्वास्थ्य व सौंदर्य के लिए व्यायाम को योग के नाम पर व्यावसायिक आधार पर प्रचारित करने वालों से तो और भी कोई अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। ऐसे लोगों तो योग का प्रेमी भी नहीं कहा जा सकता है, योगी तो बहुत बड़ी बात है। आवश्यक उपायों को अपनाना और धैर्यपूर्वक निरन्तर साधना ही योग का एकमात्र मार्ग है। साधन और साधना के बिना साध्य की प्राप्ति संभव नहीं है।

उपासना का अर्थ है निकट बैठना (उप-समीप, आसन-बैठना)। वास्तव

में परमात्मा की उपासना का एक मात्र उपाय योग साधना ही है।

साधन और पाथेय

केवल भावना और इच्छा मात्र से ही योग संभव नहीं है। आवश्यक साधन और निर्धारित प्रक्रिया को अपनाना अनिवार्य है। बाधा रहित शान्त उपयुक्त स्थान प्रथम आवश्यकता है। जीवन यापन के लिए आवश्यक न्यूनतम संसाधन होने ही चाहिए। तरोताजा प्रफुल्ल मन से निर्विघ्न बैठने की व्यवस्था होनी चाहिए। स्थान व आसन ऐसा होना चाहिए कि सुखपूर्वक बिना कष्ट बैठा जा सके। इसके साथ ही उपयुक्त मनोवैज्ञानिक वातावरण व परिवेश भी आवश्यक है। इसके लिए योग शिविर योग सम्मेलन तथा सत्संग में नियमित रूप से भाग लेना चाहिए।

योग के लिए चिन्ता मुक्त तथा निर्मल मन प्रमुख आवश्यकता है। इसके बिना योग साधना नहीं हो सकती। यदि मन चिन्ताओं से बोझिल है, अपराध भाव से ग्रस्त है और स्वयं को पापकर्मों से कलंकित मानता है तो योग साधना संभव नहीं। ऐसा टूटा हुआ और कलुषित मन एकाग्र हो ही नहीं सकता। अपराध भाव पीछा करता रहेगा और ध्यान नहीं लग सकेगा। अतः निष्कपट निष्पाप जीवन आवश्यक है।

योग स्वयं में पूर्ण जीवन दर्शन है, श्रेष्ठ जीवन शैली है। यह जीवनचर्या ही योग का प्रथम चरण है। इसे अपनाये बिना योग साधना नहीं हो सकती। योगी जीवन शैली की व्यवहारिक उपयोगिता भी है। व्यर्थ की चिन्ताओं, उलझनों व समस्याओं से मुक्ति दिलाने में सहायक है। यह व्यावहारिक है और बहुत कठिन भी नहीं है। इसके लिए विचारधारा और जीवन दर्शन में परिवर्तन अवश्य करना होगा।

योगी जीवन शैली में मुख्य बात यह है कि ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जो अपराध भाव के रूप में मन पर भार बन जाए। कम से कम ऐसा कोई कार्य न करें जिसे स्वयं ही अपराध या पाप समझते हैं। यदि जाने-अनजाने ऐसा कार्य हो गया हो तो सच्चे हृदय से प्रायश्चित करें, भविष्य में पुनः ऐसा कुछ भी न करने का दृढ़ संकल्प लें। पाप का एकमात्र प्रतिकरा प्रायश्चित

है। सच्चे मन से प्रयश्चित कर लेने और वर्तमान जीवन पाप रहित बना लेने से मन निर्मल हो जाता है और योग के लिए उपयुक्त होता है।

क्रोध, तनाव, ईर्ष्या, लोभ, द्वेष, मोह, अहंकार आदि मनोविकार योग साधना की सफलता में बाधक हैं। परन्तु विशेष बात यह कि योग साधना से ही इन पर नियंत्रण भी प्राप्त किया जा सकता है। योग साधना प्रारम्भ करने के बाद धीरे-धीरे मन शान्त होने लगता है। शान्ति और धैर्य योगी के सहज गुण हैं।

योग साधना प्रारम्भ करने मे पूर्व मानसिक रूप से तैयार होना बहुत आवश्यक है। इसके लिए साहित्य द्वारा योग विषयक प्रारम्भिक व सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त करना तथा ऐसी पुस्तकों का अध्ययन, मनन, चिन्तन करना लाभदायक है। इसके साथ योग साधकों से चर्चा करना, योग शिविरों व सम्मेलनों में भाग लेना तथा आध्यात्मिक सत्संग भी बहुत उपयोगी है। साधक को धार्मिक कर्मकाण्डी आडम्बरों से बचना चाहिए तथा प्राप्त उपलब्धियों का प्रचार नहीं करना चाहिए। इससे साधना के प्रति एकाग्रता भंग होती है।

सामान्यताः स्नान के पश्चात तन-मन में जो ताजगी अनुभव होती है, वह योग साधना में आवश्यक उपकरण का कार्य करती है। प्रातः सूर्योदय से पूर्व वातावरण में जो ताजगी व्याप्त होती है, शीतल मन्द सुगंध पवन प्रवाहित होता है, वह तन-मन में विशेष उत्साह व चेतना का संचार करता है। ऐसा वातावरण योग साधना में अति सहायक है। यदि इतने साधन उपकरण भी जुटा लिये जाएं तो योग साधना में सफलता के प्रति काफी कुछ आश्वस्त हुआ जा सकता है। निश्छल बालमन साधना के लिए बहुत उपयुक्त होता है। वर्तमान यांत्रिक जीवन, औद्योगिक परिवेश और व्यानसायिक वातावरण में उक्त साधन पाथेय जुटा पाना भी सहज नहीं है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि निराश हो जाएं, योग साधना को असम्भव या व्यर्थ मान लें। कम साधन होंगे तो अधिक समय श्रम लगाना पड़ेगा, विलम्ब होगा, कम सफलता मिलेगी, लेकिन कुछ मिलेगा ही, जाएगा नहीं। लगाये गये समय व श्रम के कुछ अनुपात में लाभ अधिक ही होगा, इतना आश्वासन तो है ही। यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है

कि योग साधना के लिए सामान्य जीवनचर्या, आजीविका या गृहस्थ जीवन का त्याग बिल्कुल भी आवश्यक नहीं है। अब जितने भी भगवान् व ऋषि हुए है वे सभी गृहस्थ ही थे। परशुराम, नारद, बुद्ध व दयानन्द जैसे कुछ अपवाद हो सकते हैं। उत्तम गृहस्थ जीवन योग साधना के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होता है। परिवार के बीच रहकर योग साधना के सफल होने की सम्भावना अधिक ही रहती है। इतना अवश्य की दीवारों के घेरे का नाम घर नहीं होता और एक छत के नीचे रहने मात्र से परिवार नहीं कहा जा सकता है। पारस्परिक स्नेह व सहयोग की भावना तो अनिवार्य है ही।

साधना पथ

योग साधना प्रारम्भ करने से पूर्व स्वाध्याय व सत्संग द्वारा भावभूमि का निर्माण आवश्यक है। कम से कम दो सप्ताह तक नियमित रूप से योग साहित्य का अध्ययन, मनन, चिन्तन व योग प्रेमियों के बीच योग चर्चा कर मानसिक पृष्ठ भूमि तैयार की जानी चाहिए। साधना का संकल्प दृढ़ हो जाने और जीवन चर्या में योग दर्शन आत्मसात् हो जाने के पश्चात् ही नियमित योग साधना प्रारम्भ करनी चाहिए। तत्काल फल प्राप्ति संभव नहीं होती। अतः भाव भूमि दृढ़ करना आवश्यक होता है। अन्यथा अतिशीघ्रता में प्रारम्भ करके शीघ्र ही निष्फल छोड़ देने से भविष्य के लिए भी रुचि जाती रहेगी।

प्रारम्भिक सप्ताहों में किसी भी सुविधाजनक आसन में कुछ समय तक स्थिर बैठने का अभ्यास करना चाहिए। जिस प्रकार सुखपूर्वक स्थिर होकर अधिक समय तक बैठा जा सके, उसे ही योग आसन कहते हैं। महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में परिभाषा की है, स्थिर-मुखम् आसनम्।

शान्त चित्त, प्रफुल्ल मन सीधे होकर बैठें और आँखें बन्द कर लें। योग जीवन की शैली, साधना आदि के विषय में प्राप्त ज्ञान का चिन्तन-मनन करें। अध्यात्म का चिन्तन करें। कुछ सप्ताहों तक यही क्रम रखें।

प्रारम्भ में विभिन्न प्रकार के विचार व स्मृतियाँ आती रहेंगी। यह स्वाभाविक है और इसे स्वाभाविक ढंग से ही लें। चिन्तित न हों, इसे बाधा न समझे और बलात् रोकने का प्रयास भी न करें। केवल इतना करें कि किसी स्मृति या विचार

पर ध्यान न दें। सहज रूप में आने-जाने दें। आभास होते ही पुनः अध्यात्म योग में खो जाएं। कुछ सप्ताहों के नियमित अभ्यास से इधर-उधर के विचार व स्मृतियों पर नियन्त्रण हो जाएगा। इस बीच धैर्य रखना आवश्यक है। इस सिथति के बाद योग का वास्तविक शुभारम्भ हो सकेगा।

योग साधना के प्रारम्भ काल में स्थिर होकर एक आसन पर कुछ देर बैठना भी पर्याप्त है। नियमित रूप से इतना करते रहना भी प्रथम चरण की सफलता कही जा सकती है। पांच मिनट से दस मिनट का समय भी प्रारम्भिक दिनों में पर्याप्त है। धीरे धीरे समय स्वतः बढ़ता जाएगा और पता भी नहीं चलेगा कि हम कब से योग साधना का आनन्द लेने लगे। जब साधना में बैठने में शान्ति और सुख का अनुभव होने लगे तो समझना चाहिए कि हम वास्तविक योग साधना में प्रवेश कर रहे हैं। यह योग साधना का प्रथम और प्रत्यक्ष प्रतिफल होगा। इसके साथ ही सहज व सरल प्राणायाम का अभ्यास भी किया जाए तो उत्तम है। प्राणायाम से विचारों पर नियंत्रण व एकाग्रता में सहायता मिलती है। आधुनिक शारीरिक व्यायाम प्रधान योग प्रचारकों ने प्राणायाम पर भी विस्तृत पुस्तकें लिखी हैं; अनेक प्रकार के दुरूह व कठिन प्राणायामों की जटिल विवेचना भी की है। विभिन्न शारीरिक आवश्यकताओं के अनुरूप उनकी उपयोगिता भी हो सकती है। परन्तु योग साधना में उन जटिल प्राणायामों का कोई स्थान नहीं है।

प्राणायाम का आरम्भ श्वांस पर दृष्टि रखने से करना चाहिए। प्राणायाम के समय सारा ध्यान श्वांस पर ही रहना चाहिए। श्वांस भीतर आने बाहर जाने की क्रिया सहज रूप में सदैव होती रहती है, लेकिन ध्यान उधर नहीं जाता है। प्राणायाम में यही करना है कि इस क्रिया को पूरी जागरूकता व ध्यान से करें। नासिका से श्वांस भीतर जाना, भरना और धीरे-धीरे निकालना यह पूरी प्रक्रिया पूरी तरह अपने ध्यान में हो, अनजाने में नहीं।

इसके बाद लम्बी श्वांस का अभ्यास करना चाहिए। धीरे-धीरे श्वांस लेना और छोड़ना सहज प्राणायाम है। जितना समय श्वँास लेने में लगे उतना ही समय श्वांस निकालने में लगना चाहिए। इसके पश्चात् दूसरे चरण में प्रयास

करें कि जितना समय श्वांस खींचने में लगा है, श्वांस निकालने में उससे दो गुना समय लगे। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया पूरी जागरूकता और ध्यान देकर करना चाहिए, प्रारम्भ में ही श्वांस को भीतर रोकने का प्रयास नहीं करना चाहिए। श्वांस को भीतर व बाहर रोकना कई सप्ताहों के पश्चात् ही प्रारम्भ करना चाहिए। प्रारम्भ में बहुत कम समय ही रोकना उचित होगा। यदि भीतर या बाहर श्वांस रोकने से जरा भी कष्ट हो तो उसे प्राणायाम नहीं कहा जा सकता। योग में आनन्द है, कष्ट या दुःख नहीं।

श्वांस की प्रकिया पूरे ध्यान व जागरूकता में हो, श्वांस भीतर खींचने व छोड़ने में भी निश्चित अनुपात हो, श्वांस में लगने वाला समय भी समान हो, प्रारम्भ में इतना ही पर्याप्त है। इस प्रकार श्वांस की प्रकिया में एक निश्चित लयात्मकता आ जाएगी। धीरे-धीरे श्वांस पर नियंत्रण स्थापित हो जाएगा।

प्रयास और प्रतिफल

योग साधना में करना केवल यही है। हमारा प्रयत्न, हमारी साधना बस इतनी ही है। शेष तो साधना का फल है। 5 यम व 5 नियम जीवन में धारण कर लेते हैं, किसी भी सुविधाजनक आसन में स्थिर बैठने का अभ्यास करना है। प्राणायाम नियमित रूप से करना है। इस प्रकार बाहरी विषयों से मन को मुक्त करने का अभ्यास हो जाएगा। विचारों का बिखराव समाप्त हो जाएगा और इच्छित विषय पर मन एकाग्र होने लगेगा। साधना में बैठकर मन योग-अध्यात्म विषय पर ही एकाग्र रहे, यही पर्याप्त है। यही व्यावहारिक प्रत्याहार कहा जा सकता है। किसी निश्चित सूक्ष्म बिन्दु पर चित्त को एकाग्र करना ही धारणा है उक्त क्रम से अभ्यास करने पर यह भी स्वतः सिद्ध हो जाएगा। अध्ययन व जीवनचर्या के अन्य कार्यों में इससे काफी शक्ति मिलती है।

विद्यार्थियों व शोधकर्ताओं के लिए कम से कम परिश्रम में अधिक सफलता का चमत्कार इस योग साधना से संभव है। चित्त एकाग्र होने लगा तो हर कार्य में एकाग्र होगा।

ध्यान लगाया नहीं जाता, वह तो स्वतः लग जाता है। ध्यान करने का प्रयास व्यर्थ है, वह तो स्वयम् ही हो जाएगा। समाधि ही तो योग की चरम

अवस्था है। उसके लिए कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, रास्ता चलकर तय करना पड़ता है, फलस्वरूप मंजिल पर पहुँच जाते हैं। मंजिल पाने के लिए रास्ता चलने के अलावा कुछ नहीं करना पड़ता है। समाधि ही योग की मंजिल है, परम लक्ष्य है, चरम प्रतिफल है।

अष्टांग योग : योग के आठ चरण

मूल वैदिक योग या आत्म योग अमूर्त साधना है। परन्तु सामान्य जन को उस स्थिति तक जाने के लिए एक निश्चित साधना प्रणाली की आवश्यकता होती है। पतंजलि ने वह प्रणाली व्यावहारिक बना कर हमें दी। यह भी कह सकते है कि अमूर्त योग में उन्होंने ही पहली बार मूर्त तत्वों का समावेश किया। उसमें भी कोई विशेष प्रयास नहीं है, केवल शरीर की स्वाभाविक स्थितियों के प्रति ही कुछ जागरूकता का भाव जुड़ जाता है। इस प्रकार पातंजलि योग या राज योग को हठयोग की ओर पहला कदम या बीच की कड़ी भी कह सकते हैं।

1. यम

यम के अन्तर्गत उन कार्यों, स्वभाव-विचारों व स्थितियों से बचने का निर्देश दिया गया है जिससे मन पर अपराध बोध अंकित हो, मन तनावग्रस्त हो, भयग्रस्त हो और पाप करने की भावना के भार से बोझिल हो। सूत्र रूप में पांच बातों की गणना की गयी है। अक्षरशः पालन करने से अधिक महत्वपूर्ण है मन को बोझिल होने से बचाये रखना।

(1) अहिंसा- अर्थात् किसी को कष्ट न पहुँचाना। मन, वचन या कर्म से ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए, जिससे किसी को कष्ट पहुँचे। चिकित्सा तथा न्याय करने में मूल भावना लोकहित होने से सामान्य रूप से किसी को कष्ट प्रतीत होने पर भी अहिंसा व्रत का उल्लंघन नहीं होता।

(2) सत्य- मन, वचन या कर्म से ऐसा कुछ न करें जिससे असत्य या मिथ्या की प्रतिष्ठा हो। सत्य की मूल भावना की रक्षा अनिवार्य है, बाह्य रूप महत्वपूर्ण नहीं है।

(3) अस्तेय- इसका अर्थ है चोरी न करना। चोरी में हिंसा व असत्य दोनो स्वतः सम्मिलित होते हैं। यह स्थूल व प्रत्यक्ष पाप है योग साधक को इससे हर प्रकार से बचना ही चाहिए!

(4) ब्रह्मचर्य- परम चेतना से जुड़ने के अनुकूल जीवनचर्या अपनाना ब्रह्मचर्य है। असात्विक, तनाव तथा उत्तेजना बढ़ाने वाले कार्य इसके विपरीत हैं। ब्रह्मचर्य का अर्थ काम-भाव का पूर्णतः निषेध नहीं है। तनाव व उत्तेजना बढ़ाने वाला हर समय काम चिन्तन योग में बाधक है। नैतिक मर्यादाओं के अन्तर्गत सहज भाव से काम सम्बन्ध अनुचित नहीं है।

(5) अपरिग्रह- अनावश्यक रूप से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना अपरिग्रह है। परन्तु जीवन के लिए अनिवार्य न्यूनतम आवश्यकता तो पूरी करनी ही है। आवश्य साधनों को अपरिग्रह के नाम पर त्यागना योग साधना में बाधक ही होगा, साधक नहीं।

2. नियम

इस में उन पाँच नियमों का निर्देश है जिनका पालन करने मे चित्त निर्मल, निष्कलुष, पापरहित और पवित्र होकर योग साधना के अनुकूल बनाता है। इनका पालन किये बिना योग साधना संभव ही नहीं है। तनाव रहित, चिन्ता मुक्त जीवन जीने के लिए भी इनका पालन आवश्यक और उपयोगी है।

1. शौच- इसका अर्थ है पवित्रता, निर्मलता, निष्कलुषता। मन, वचन व कर्म से योग साधक को निच्छल, निष्कपट तथा शरीर व हृदय से पवित्र होना ही चाहिए।

2. संतोष- योग साधक को न्यूनतम सांसारिक साधनों से संतोष करना ही पड़ता है। अपनी शक्तियों, समय श्रम को भौतिक वस्तुओं के अर्जन में न लगाकर मुख्य लक्ष्य योग में लगाना चाहिए, तभी साधना में सफलता सहज संभव होगी। वैसे एक योगी के लिए दुर्लभ कुछ भी नहीं होता है।

3. तप- कष्ट सहकर भी अनेक विघ्न-बाधाओं के बीच साधना को नियमित रूप से चलाते रहना चाहिये, यही तप है।

4. स्वाध्याय- अध्यात्म व योग साहित्य का अध्ययन नियमित रूप से

करना चाहिए। यही स्वाध्याय व्रत है।

5. ईश्वर प्रणिधान- परम चेतन सत्ता के प्रति समर्पण की भावना होनी चाहिए। जीव चेतना आत्मा के लिए परम लक्ष्य परम चेतना परमात्मा से मिलन ही है, यह निश्चय होना चाहिए। योग साधना का यही मूल दर्शन है।

3. आसन

जिस स्थिति में सुखपूर्वक काफी समय तक स्थिर होकर योग साधना के लिए बैठना संभव हो, वही आसन है।

4. प्राणायाम

श्वांस क्रिया पर नियन्त्रण कर प्राण को मनोवांछित लय और आयाम प्रदान करना ही प्राणायाम है।

5. प्रत्याहार

वाह्य प्रकृति व सांसारिक विषय से मन को खींच लेना ही प्रत्याहार है।

6. धारणा

किसी बिन्दु पर मन को स्थिर करना ही धारणा है। शरीर का कोई अंग, विशेष रूप से नासिकाग्र (नाक का अगला भाग) भ्रू मध्य (दोनों भवों के बीच प्रज्ञा चक्षु या तीसरे नेत्र का स्थान) नाभि, हृदय आदि भी वह लक्ष्य बिन्दु हो सकते हैं। आंखों के सम्मुख कल्पित ज्योति विन्दु पर भी धारणा की जा सकती है।

7. ध्यान

यह धारणा की स्थिति का अगला चरण है। इसे धारणा की सफलता या उसका फल भी कहा जा सकता है। जब धारणा में चित्त इतना एकाग्र हो जाता है कि उसके अतिरिक्त अपने आस-पास की स्थिति, यहां तक कि स्वयं अपने शरीर की भी अनुभूति न हो तो उस अवस्था को ध्यान की अवस्था कहते हैं।

योग साधना में वास्तविक फल प्राप्ति ध्यान से ही प्रारम्भ होती है। लेकिन

इस अवस्था तक पहुँचने के लिए लम्बे धैर्य व नियमित साधना की आवश्यकता है।

8. समाधि

योग साधना का परम लक्ष्य समाधि है। साधक को शुद्ध चेतना की ही अनुभूति शेष रह जाती है। इस अवस्था में परम चेतन सत्ता से सम्बन्ध स्थापित हो जाने के कारण अलौकिक अनुभूति होती है। साधक अलौकिक दिव्य शक्तियों का धनी हो जाता है। यही वास्तविक योग की अवस्था है, जब जीव चेतना आत्मा और परम चेतना परमात्मा के बीच योग अर्थात् जुड़ाव या मिलन हो जाता है। ऐसे योगी के लिए कुछ भी दुर्लभ या असम्भव नहीं रह जाता है।

ॐ

7. वैदिक चिन्तन

1. ऋत सिद्धान्त :- वैदिक ऋत सिद्धान्त बहुत महत्वपूर्ण है। व्यापक प्राकृतिक नियमों को ऋत कहते हैं। प्रत्येक घटना या कार्य ऋत के अनुसार ही सम्भव होता है तथा उसी ऋत के अनुसार कभी भी पुनः हो सकता है। ऋत के विपरीत उसका उल्लंघन करके कभी कुछ होना सम्भव नहीं है। ऋत सिद्धान्त ही विज्ञान और दर्शन का आधार है। ऋत विज्ञान पांच हैं; पदार्थ विज्ञान, ऊर्जा विज्ञान, चेतना विज्ञान, जीव विज्ञान तथा गणना विज्ञान या गणित।

ऋत सिद्धान्त के अनुसार कोई चमत्कार या ऐसी आकस्मिक घटना सम्भव नहीं है जो पुनः न हो सके। जो पहले कभी भी हुआ है, वह पुनः किसी भी समय किसी अन्य के द्वारा भी हो सकता है।

वैदिक ऋत सिद्धान्त तथा ऋत मूलक मानव विकासवाद सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कतिक, धार्मिक, राजनीतिक, शासन, प्रशासन तथा आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों में स्पष्ट मार्ग दर्शन करता है। इसके अनुसार प्रत्येक विषय पर स्पष्ट निर्णय किया जा सकता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार ऋत द्वारा संचालित विकासक्रम व्यापक प्राकृतिक प्रक्रिया है। कुछ बाधाओं के कारण विकास की दिशा प्रभावित होती है या अवरोध उत्पन्न हो जाता है। उन बाधाओं को दूर कर स्वाभाविक विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। व्यवस्था किसी के विकास की दिशा या लक्ष्य निर्धारित नहीं करती है, केवल सभी व्यक्तियों को स्वेच्छा से निर्धारित दिशा में विकास का अवसर प्रदान करती है। इसके लिए 'सबको शिक्षा संस्कार, सबको निश्चित रोजगार' मिलना आवश्यक है। इससे विकास के लिए समुचित प्रेरणा तथा न्यूनतम आवश्यक संसाधन सभी को उपलब्ध हो सकेंगे।

ऋत व्यापक प्राकृतिक नियमों को कहते हैं। वैदिक ऋत सिद्धान्त का

भाव यही है कि प्रत्येक कार्य या घटना के मूल में कोई ऋत या व्यापक प्राकृतिक नियम अवश्य होता है। ऋत के ज्ञान तथा उपयोग से प्रकृति की शक्तियों तथा पदार्थों का उपयोग मानव के विकास में किया जा सकता है। ऋत का उल्लंघन कर कोई कार्य सम्भव नहीं है। अतः चमत्कार केवल उस कार्य या घटना को कहा जाता है, जिसके मूल में छिपे ऋत का ज्ञान न हो। सूर्य का प्रतिदिन उदय और अस्त होना भी उन लोगों के लिए चमत्कार है जिनको इस घटना के मूल कारण ऋत का ज्ञान नहीं है। चेतना विज्ञान, मनोविज्ञान, पदार्थ विज्ञान सभी का मूल ऋत सिद्धान्त ही है।

2. वैदिक इन्दु सिद्धान्त :- इन्दु सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण वैदिक विचार है। ब्रह्म चेतना को ग्रहण करने का विज्ञान तथा उसके वितरण का दायित्व इसका मूल तत्व है। परम तत्व ब्रह्म से वेद ब्रह्म प्राप्त होता है, यही प्रक्रिया इन्दुत्व या इन्दु सिद्धान्त है।

इन्दु शब्द 'इन्द्' धातु से बना है। इन्द् का अर्थ है प्रकाश करना तथा ऐश्वर्य होना। इससे इन्दु शब्द का अर्थ हुआ प्रकाश तथा ऐश्वर्ययुक्त। गुणवाची अर्थ में देव, आर्य, मानव, वैदिक शब्द भी इन्दु के समानार्थी या पर्यायवाची हैं। अतः इन्दु शब्द में विद्वान, श्रेष्ठ, चिन्तनशील, ऐश्वर्यशाली, प्रकाश युक्त अर्थ भी समाहित हैं। इन गुणों से युक्त आत्मा इन्दु है, वेद इन्दु है, वेद को जानने वाला इन्दु है तथा वेद का प्रचार-प्रसार करने वाला इन्दु है। पारिभाषिक शब्द के रूप में इन्दु का अर्थ है वेद तथा वेद का अनुयायी प्रचारक समुदाय। वेद में इन्दु तथा उसके बहुवचन रूप इन्दवः (इन्दु लोग) तथा इन्दुभिः (इन्दुओं द्वारा) शब्दों का प्रयोग अनेक मन्त्रों में हुआ है।

इससे स्पष्ट है कि वेदवाणी की सरसता, वेद के दिव्य ज्ञान का प्रकाश, वेद का आध्यात्मिक ऐश्वर्य, वैदिक चिन्तन तथा वैदिक श्रेष्ठता को स्वयं में धारण करने वाला और अन्य लोगों में उसका प्रचार-प्रसार करने वाला ही 'इन्दु' है। वेद समस्त संसार के लिए है। किसी भी देश, जाति, सम्प्रदाय, वर्ग, पंथ को मानने वाला व्यक्ति किसी भी समय उससे लाभ उठा सकता है। प्राचीनतम श्रेष्ठ साहित्य वेद को आदि स्रोत स्वीकार करने वाला प्रत्येक व्यक्ति

वैदिक परिवार में सम्मानित सदस्य है, उसका पंथ कुछ भी क्यों न हो। वह अपने पंथ को सम्मान देते हुए वैदिक इन्दु हो सकता है। वेद का स्वाध्याय तथा उसके अनुकूल आचरण ही इन्दुत्व है।

3. हिन्दुत्व :- हिन्दु शब्द को हि गतौ वृद्धे परितापे धातु से निष्पन्न मानना उचित है। हिनोति इति हिन्दु व्युत्पत्ति देना तर्कसंगत है। हि धातु का अर्थ गति, ज्ञान, प्राप्ति, वृद्धि करना हाता है। इससे इन अर्थों में हिन्दु शब्द को स्वीकार किया जा सकता है। हिन्दु शब्द को वैदिक 'इन्दु' शब्द का अपभ्रंश भी माना जाता है जिसका अर्थ वैदिक चेतना से युक्त तथा उसका प्रसार करने वाला है। अतः घर में वेद स्थापना अवश्य होनी चाहिए तथा उसका पाठ, अध्ययन, मनन करते रहना चाहिए। हमारा आचार-विचार वेद के अनुकूल होना चाहिए। किसी प्रकार का भ्रम होने पर वेद के अनुसार निर्णय करना चाहिए।

माना जाता है कि प्रभावशाली वैदिक समुदाय के अर्थ में इन्दु से महाप्राण 'हिन्दु' शब्द बना है। 'इ' के स्थान पर महाप्राण 'हि' हो जाने से इन्दु से हिन्दु शब्द बनता है। एक समुदाय के रूप में इन्दु के स्थान पर हिन्दु तथा इन्दुत्व के स्थान पर हिन्दुत्व का प्रयोग व्यापक रूप से होने लगा है। संस्कृत के दश को हिन्दी में दस कहते हैं तथा धूम को धूम्र। इसी प्रकार इन्दु को हिन्दु कहा जाने लगा है। संस्कृत में 'गृह' को हिन्दी में घर कहते हैं। यहाँ भी 'ग' के स्थान पर महाप्राण 'घ' हो गया है।

वेद का स्वाध्याय तथा उसके अनुकूल आचरण ही हिन्दुत्व है। हिन्दु शब्द को हि गतौ वृद्धे परितापे धातु से निष्पन्न मानना उचित है। हिनोति इति हिन्दु व्युत्पत्ति देना तर्कसंगत है। हि धातु का अर्थ गति, ज्ञान, प्राप्ति, वृद्धि करना हाता है। इससे इन अर्थों में हिन्दु शब्द को स्वीकार किया जा सकता है। हिन्दु शब्द को वैदिक 'इन्दु' शब्द का अपभ्रंश भी माना जाता है जिसका अर्थ वैदिक चेतना से युक्त तथा उसका प्रसार करने वाला है। अतः घर में वेद स्थापना अवश्य होनी चाहिए तथा उसका पाठ, अध्ययन, मनन करते रहना चाहिए। हमारा आचार-विचार वेद के अनुकूल होना चाहिए। किसी प्रकार का भ्रम होने पर वेद के अनुसार निर्णय करना चाहिए।

4. वैदिक संस्कृति :- साहित्य, भाषा, इतिहास, दर्शन तथा आचरण संस्कृति के पांच मूल तत्व होते हैं। अतः वेद, संस्कृत भाषा, वैदिक इतिहास, वेद के अनुकूल दर्शन तथा आचरण को अपनाना ही वैदिक संस्कृति है। उसका पालन करना हमारा कर्तव्य है। ऐतिहासिक महापुरुषों तथा घटनाओं से जुड़ी तिथियों को पर्व के रूप में मनाना तथा युगाब्द का प्रयोग लोक व्यवहार में करना चाहिए। प्रतिदिन वेद पाठ करना तथा प्रतिवर्ष नव युगाब्द को प्रमुख संस्कार-पर्व के रूप में मनाना चाहिए क्योंकि युगाब्द ही प्राचीनतम ऐतिहासिक सम्वत् है।

5. संस्कृति परिवार :- विश्व में कुछ प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र हैं जहाँ अनेक संस्कृतियों का उदय और विकास हुआ। स्वाभाविक रूप से एक केन्द्र से विकसित संस्कृतियों का मूल एक होता है तथा उनमें अनेक समानताएँ पायी जाती हैं। अतः उन संस्कृतियों को 'संस्कृति परिवार' माना जाना चाहिए। भारत, मिश्र, पश्चिम एशिया, यूरोप, चीन, अमेरिका आदि प्रमुख संस्कृति केन्द्र रहे हैं। यूरोप, अमेरिका, अफ्रीका, मिस्र, इराक, ईरान, की मूल प्राचीन संस्कृतियाँ पश्चिम एशिया की ईसाई तथा इस्लामी संस्कृतियों के प्रभाव से लगभग समाप्त हो गयी हैं। आधुनिक पश्चिमी संस्कृति ईसाई तथा यूरोपीय संस्कृति का मिश्रित रूप है।

एक संस्कृति परिवार की मूल भाषाओं, साहित्य तथा इतिहास का मूल स्रोत एक ही होता है। एक मूल के कारण उनके दर्शन तथा आचार-विचार में भी समानताएँ होती हैं।

6. भारतीय संस्कृति :- भारत में विकसित वैदिक, बौद्ध, पारसी, जैन, सिख आदि संस्कृतियों की भाषा संस्कृत या उससे उत्पन्न भाषाएं पालि, जेन्द, प्राकृत, गुरुमुखी पंजाबी आदि हैं। इतिहास, दर्शन, लोकाचार भी लगभग एक समान हैं। विश्व का प्राचीनतम साहित्य वेद इन सभी का मूल स्रोत है तथा वैदिक संस्कृत ही इनकी भाषाओं की जननी है। पारसी धर्म ग्रन्थ जेन्द अवेस्ता की भाषा तो संस्कृत की निकटतम बोली ही प्रतीत होती है। उसके बाद पालि, प्राकृत, तमिल, पंजाबी, हिन्दी आदि का विकास हुआ।

7. ब्रह्म, जीव, प्रकृति :- सम्पूर्ण सृष्टि को मूलतः दो भागों में विभाजित किया गया है। दर्शन शास्त्र में उसे जड़ तथा चेतन और विज्ञान में निर्जीव तथा सजीव कहा जाता है। जड़ या निर्जीव के दो रूप पदार्थ तथा ऊर्जा और चेतन तत्व के दो रूप ब्रह्म तथा जीवात्मा है। इनके परस्पर सम्बन्धों पर विचार करना ही दर्शन का मुख्य विषय है।

कुछ विद्वान ब्रह्म को मूल तत्व और जीव तथा प्रकृति या जड़ तत्व को उसी से उत्पन्न मानते हैं। कुछ लोग ब्रह्म तथा जीव को तो एक तत्व मानते हैं परन्तु जड़ प्रकृति को उससे उत्पन्न नहीं मानते और स्वतन्त्र, अनादि एवं ब्रह्म के ही समान स्वतन्त्र अनादि सत्ता वाला तत्व स्वीकार करते हैं। इसे 'द्वैत' सिद्धान्त कहते हैं। कुछ लोग ब्रह्म, जीवात्मा तथा प्रकृति तीनों को अनादि स्वतन्त्र तत्व मानते हैं।

8. जीवन :- वेद के अनुसार ब्रह्म सर्वव्यापक है। प्रकृति भी पूर्ण अचेतन नहीं है। ब्रह्म से प्रकृति भी उत्पन्न हुई है। जीव का शरीर भी प्रकृति का रूप है। वह सर्वव्यापक ब्रह्म की चेतना का आभास देने में सक्षम है, अतः चेतन प्रतीत होता है। कुछ विकार आ जाने पर उस शरीर की यह क्षमता समाप्त हो जाती है तो वह जड़ प्रतीत होने लगता है, यही मृत्यु है। अतः सर्वव्यापक ब्रह्म की चेतना का उपयोग करने योग्य प्राकृतिक, संरचना या जीव-शरीर जहाँ भी होगा, वहाँ जीवन रहेगा। यह एक महत्वपूर्ण 'ऋत' या नियम है। सम्पूर्ण आयुर्वेद या चिकित्सा विज्ञान भी इसी ऋत पर आधारित है। इसलिए मृत जीव को पुनः जीवित करने की आशा भी चिकित्सा विज्ञान को है। ऐसा कर लेना वैदिक ऋत सिद्धान्त अर्थात् वेद के अनुकूल ही है। जीव कोशिका प्रकृति का एक रूप है। उसमें ब्रह्म को चेतन सत्ता का प्रत्यक्ष आभास होना ही जीवन है। यह क्षमता न होना ही जड़ या निर्जीव होना है।

इसे एक उदाहरण से समझने का प्रयास करते हैं। सूर्य का प्रकाश व्यापक रूप से पृथ्वी पर फैला है। इस प्रकाश से विभिन्न वस्तुएं दिखायी पड़ती हैं जबकि वायु नहीं दिखायी पड़ती है। वायु में प्रकाश के माध्यम से दिखायी पड़ने का गुण नहीं है। कुछ वस्तुओं में सूर्य के प्रकाश से चमक उत्पन्न होती

है। अच्छे दर्पण से प्रकाश उस स्थान पर भी पहुँच सकता है जहाँ सीधे सूर्य की किरण नहीं पहुँच रही है। उत्तल लेंस के माध्यम से सूर्य का प्रकाश कागज तथा घास को जला भी सकता है। ये विशेष क्षमताएं दर्पण और लेंस में विशेष संरचना के कारण हैं। इसी प्रकार से जिस जीव शरीर में जिस प्रकार की क्षमताएं होती हैं, वह सर्वव्यापक ब्रह्म की चेतन सत्ता का उसी प्रकार से उपयोग करने लगता है। इसी स्थिति को हम जीवन कहते हैं।

इसी प्रकार तार में विद्युत ऊर्जा प्रवाहित हो रही है। एक बल्व उसके द्वारा प्रकाश उत्पन्न करता है, पंखा हवा देता है, हीटर गर्मी देता है और कूलर शीतलता उत्पन्न करता है। कम्प्यूटर अन्य विभिन्न कार्य उसी विद्युत से कर सकता है। इसी तरह विभिन्न प्रकार के जीव-शरीर भी सर्वव्यापक ब्रह्म की चेतन शक्ति से विभिन्न कार्य करने में समर्थ हो जाते हैं।

चेतन सत्ता तो ब्रह्म की है और कार्य जीव का शरीर करता है, अतः कर्म उसमें लिप्त नहीं होता है। यजुर्वेद में चालीसवें अध्याय के तीसरे मन्त्र में कहा गया है - 'न कर्म लिप्यते नरे' अर्थात् व्यक्ति में कर्म लिप्त नहीं होता है। उसी अध्याय में कहा गया है कि 'भस्मान्तम् शरीरम्' अर्थात् जलकर भस्म हो जाने पर शरीर का अन्त हो जाता है। वहीं यह भी कहा गया है कि एकत्व का अनुभव करने से शोक और मोह नहीं होता है। अतः एकत्व या अद्वैत ही वैदिक दर्शन है।

9. पुनर्जन्म, कर्मफल, मोक्ष :- वैदिक एकत्व दर्शन के अनुसार कर्म शरीर करता है तथा जीवात्मा ब्रह्म या परमात्मा से भिन्न कोई तत्व नहीं है। अतः कर्मफल भोगने के लिए पुनर्जन्म होने तथा पुनर्जन्म से बचने की बात निराधार है। जीव जो भी कर्म करता है, उसका फल उसे तत्काल मिल जाता है। वह आग को छूते ही जल जाता है, यही ऋत है। ऐसा नहीं होता है कि किसी ने इस जन्म में आग को छुआ तो उसको अगले जन्म में जलन का अनुभव हो। कोई स्वयं आग को छुए, अन्जाने में आग छू जाए या अन्य कोई उसे जबरदस्ती आग से छुआ दे, इन सभी स्थितियों में वह तुरन्त जलेगा क्योंकि यही ऋत है और ऋत का उल्लंघन सम्भव नहीं है। इस तरह स्पष्ट है कि

कर्मफल इसी जन्म में मिलता है और उसके लिए अगला जन्म लेने की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

इसके अतिरिक्त जीव को दूसरों के कर्मों का फल भी भोगना पड़ता है और इसीलिए शासन, सुरक्षा, न्याय और समाज-व्यवस्था बनायी जाती है जिससे किसी के कर्मों का नकारात्मक फल किसी अन्य को न भोगना पड़े। यदि ऐसा न होता तो किसी के जलाने से कोई न जलता और किसी के मारने से कोई न मरता। तब अपराध कहा जाने वाला कोई कार्य सम्भव ही नहीं होता। अतः कर्मफल के लिए पुनर्जन्म की कल्पना अनावश्यक और निराधार है। इसलिए पुनर्जन्म से छुटकारा या मोक्ष पाने की कल्पना भी व्यर्थ है। समस्याओं से मोक्ष य छुटकारा पाने का प्रयास करना चाहिए, काल्पनिक पुनर्जन्म से नहीं।

यह सम्भव है कि स्थूल शरीर के नष्ट होने के बाद सूक्ष्म शरीर बच जाए तथा वह कुछ स्मृतियों या संस्कारों के साथ किसी अन्य स्थूल शरीर में प्रवेश ले ले। पर ऐसी सम्भावना भी बहुत कम होती है। परन्तु जीवात्मा के पुनर्जन्म का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। इसलिए पुनरजन्म में कर्मफल भोगने का उल्लेख वेद में नहीं है।

10. वर्ण-व्यवस्था :- वर्ण शब्द का अर्थ है चुना हुआ या चयनित। जो व्यक्ति जिस व्यवसाय को चुन लेता है, वही उसका वर्ण कहा जाता है। समाज में व्यवसायों या वर्णों की संख्या असीमित है। वेद में अनेक वर्णों का उल्लेख है। उनमें चार वर्ण - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भी सम्मिलित हैं किन्तु वेद ने सम्पूर्ण समाज को केवल चार वर्णों में विभाजित करने की बात कहीं नहीं कही है। इसके विपरीत पंचजनाः अर्थात् पांच प्रकार के लोगों का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है। परन्तु इसे पांच वर्ण मानना अनुचित है क्योंकि वेद में अनेकानेक वर्णों का उल्लेख है जिनकी पूरी सूची बनाना कठिन कार्य है। वैदिक समाज में जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था तथा ऊँच-नीच की भावना की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

11. वैदिक विकासवाद :- ब्रह्म अतिसूक्ष्म सर्वव्यापक तथा सृष्टि का मूल है। उससे ऊर्जा, आकाश तथा परमाणुओं का विकास हुआ। हम जानते

हैं कि द्रव्य या पदार्थ ऊर्जा का घनीभूत रूप है। द्रव्य को ऊर्जा में तथा ऊर्जा को द्रव्य में बदला जा सकता है। सृष्टि में ऋत के अनुसार ये परिवर्तन होते रहते हैं। इसी क्रम में द्रव्य का ऐसा रूप भी विकसित हो जाता है जो ब्रह्म की चैतन्यशक्ति को धारण, प्रदर्शित तथा उपयोग करने योग्य होता है। उसे जीव कहते हैं। द्रव्य की उस संरचना का विकास तथा उसके लिए आवश्यक अन्य द्रव्य उसके निकट उपस्थित रहना ही जीवन का अस्तित्व बने रहने के लिए आवश्यक है। ब्रह्म सर्वव्यापक है, अतः चैतन्य शक्ति तो सर्वत्र उपस्थित है ही। केवल उस चेतना को धारण तथा उपयोग करने योग्य 'जीव शरीर' का विकास होने की आवश्यकता होती है। अनुकूल स्थिति होने पर जीवन का विकास हो जाता है।

ब्रह्म की चेतन शक्ति का उपयोग कर 'जीवन' का रूप धारण करने योग्य द्रव्य की संरचना को 'जीवकोशिका' कहते हैं। एक जीव-कोशिका भी पूर्ण जीव है। क्रमशः अनेक जीव-कोशिकाएँ मिलकर एक जीव शरीर का रूप लेने लगती हैं। इस प्रकार बड़े जीव-शरीर का विकास होता है। वे बहु कोशीय जीव होते हैं। पृथ्वी पर सर्वाधिक विकसित जीव मनुष्य है। इसका अर्थ है कि मनुष्य में अन्य जीवों की अपेक्षा ब्रह्म की चेतना शक्ति का उपयोग करने की क्षमता सबसे अधिक है। सृष्टि में इस दृष्टि से मनुष्य से भी अधिक विकसित जीवों का विकास सम्भव है।

12. वैदिक साम्यवाद :- आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक दृष्टि से सभी मनुष्य विकास की समान अवस्था में हैं और सभी की चेतन क्षमता का स्तर समान है। अतः समाज में विकास के स्तर की दृष्टि से जो अन्तर दिखायी पड़ता है, वह अवैज्ञानिक, तथा वेद के विरुद्ध है। यह अन्तर समाज की व्यवस्था वेद के विरुद्ध हो जाने के कारण उत्पन्न हुआ है। वेद के अनुकूल सामाजिक व्यवस्था बनाकर पुनः सम्पूर्ण समाज को समान रूप से विकसित तथा सुखी बनाया जा सकता है।

आदिकालीन मानव पूर्ण प्राकृतिक वातावरण में रहता था। उस समय किसी के पास कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति या संसाधनों पर किसी का निजी

अधिकार नहीं था। प्राकृतिक साधन सभी को समान रूप से सुलभ थे। सभी लोग समान रूप से सुखी थे। धीरे-धीरे भौतिक साधनों का विकास हुआ तथा उन पर कुछ लोग विभिन्न उपायों से अधिकार करने लगे। बाद में अन्यायपूर्वक कुछ लोगों ने सुविधाएं अपने अधिकार में कर लीं तथा समाज के बहुत बड़े वर्ग को जन्म के आधार पर ही साधन सुविधाओं तथा सम्मान से वंचित कर दिया। इस स्थिति में सुधार के लिए भी समय-समय पर प्रयास होते रहे हैं। समाज में पूर्णतः न्यायपूर्ण व्यवस्था तभी हो सकती है जब वेद के अनुकूल समाज-व्यवस्था बनाने का प्रयास किया जाए। जो लोग विकास में पीछे रह गये हैं, उनको समान अवसर, संसाधन तथा उचित वातावरण मिले तो उनका भी तीव्र विकास हो सकता है।

13. सामाजिक न्याय :- विकास स्वाभाविक प्राकृतिक प्रक्रिया है। यह सदैव लती रहती है। अतः विकास होना सुनिश्चित है। वातावरण के अनुसार विकास प्रभावित होता है। अनुकूल वातावरण मिलने पर विकास की गति बढ़ जाती है। प्रतिकूल परिस्थितियों में विकास अवरुद्ध हो जाता है तथा अस्तित्व की रक्षा करना भी कठिन हो जाता है। विकास क्रमशः होता है परन्तु उसकी गति तथा दिशा वातावरण तथा परिस्थितियों पर निर्भर है। यही विकासवाद का मूल सिद्धान्त है। सभी मनुष्यों में ब्रह्म की चेतना के उपयोग की क्षमता समान स्तर की है। अतः अवसर, साधन तथा वातावरण मिलने पर सभी का विकास समान स्तर पर हो सकता है। इसी तरह सभी को समान विकास करने का प्रयास करना चाहिए। यही वैदिक सामाजिक न्याय है।

14. विशेष अवसर :- संयोगवश कुछ लोग विकास की दौड़ में पिछड़ जाते हैं। ऐसा कई कारणों से होता है। साधनों का अभाव तथा वातावरण उनमें प्रमुख हैं। कभी-कभी दुर्घटनावश कोई व्यक्ति विकलांग हो जाता है। जन्म से भी कुछ लोग विकलांग होते हैं। यह विकलांगता मस्तिष्क सहित शरीर के किसी अंग में हो सकती है। ऐसे लोगों को विशेष अवसर तथा सहयोग की आवश्यकता होती है। यही यज्ञ की मूल भावना भी है और यही सामाजिक न्याय है।

15. धार्मिक कर्मकाण्ड :- समाज में धर्म के प्रति जागरूकता बनाये रखने के लिए विभिन्न प्रकार के कर्मकाण्ड आयोजित किये जते हैं। मूर्ति पूजा, अग्निहोत्र, संस्कार, मन्त्र जाप, पाठ, कथा, सत्संग, भजन-कीर्तन, तीर्थयात्रा आदि इसी प्रकार की परम्पराएं हैं। ये कर्मकाण्ड धर्म नहीं हैं, केवल धर्म प्रचार तथा चेतना जगाने के साधन हैं। साधना का लक्ष्य जहाँ तक पूरा हो, ये साधन वहीं तक उपयोगी हैं। माध्यम को लक्ष्य और साधन को साध्य मान लेना हानिकारक होता है।

वेद पाठ, स्वाध्याय तथा व्याख्यान सर्वश्रेष्ठ कर्मकाण्ड हैं। इसे सामूहिक रूप से करना तथा इसके लिए अंशदान देना 'यज्ञ' है। यज्ञ के तीन अंग हैं - वेद तथा वैदिक विद्वानों का सम्मान, सामूहिकता तथा संगठन एवम् दान। इसलिए यज्ञ को श्रेष्ठ कर्म माना गया है तथा प्रत्येक धार्मिक कर्मकाण्ड के साथ यज्ञ करने की परम्परा स्थापित की गयी है। परन्तु यज्ञ के वास्तविक अर्थ को न समझ कर उसके नाम पर अग्निहोत्र करके औपचारिकता पूरी करना व्यर्थ है तथा हानिकारक भी। अग्निहोत्र को तभी उचित कहा जा सकता है जब भूमि का आधे से अधिक भाग वन हो तथा प्रत्येक अग्निहोत्र से पूर्व वृक्षारोपण अवश्य किया जाए।

ॐ

8. वैदिक आचार

वैदिक सांस्कृतिक विकासवाद

प्रारम्भ में मानव प्राकृतिक परिस्थितियों पर निर्भर था। ऋत का ज्ञान होने पर मानव ने उसका तथा पदार्थों मिट्टी, धातु काष्ठ आदि का उपयोग आवश्यकता के अनुसार करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार मानव विकास करता हुआ पृथ्वी और सौर मण्डल से भी बाहर अनन्त अन्तरिक्ष तक पहुँचने में सफल हुआ।

व्यक्ति, संस्था, समाज, राष्ट्र तथा विश्व के स्तर पर वैदिक मानव विकासवाद के सिद्धान्त समान रूप से लागू होते हैं। सभी को विकास का अवसर तथा सभी का सम्मान इसके मुख्य तत्व हैं। सबको अवसर मिले तथा प्रयास किया जाये तो सभी का विकास होना सुनिश्चित है। व्यापक प्राकृतिक नियम ऋत के अनुसार ही सृष्टि का उद्भव तथा विकास होता है। आध्यात्मिक, वैज्ञानिक तथा दार्शनिक इस बात पर एकमत हैं कि वर्तमान विराट सृष्टि व्यापक प्राकृतिक नियम ऋत के अनुसार हुए क्रमिक विकास का परिणाम है। अनादि ब्रह्म, चेतन गतिशील द्रव्य या शून्य से ही नाना रूपमयी अनन्त सृष्टि का विकास हुआ। सरल एक कोशीय जीवों में जटिल बहुकोशीय जीवों का विकास हुआ जिसकी श्रेष्ठतम कड़ी मानव है। इसी प्रकार असभ्य, जंगली व पशुतुल्य आदि मानव से आधुनिक सभ्य मानव का विकास हुआ।

व्यक्तिगत या सामूहिक रूप में समाज और राष्ट्र का भी क्रमिक विकास ही हुआ है। भविष्य में भी बौद्धिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विकास भी इसी प्रकार क्रमिक रूप से ही संभव है। वर्तमान जटिल व्यवस्था के कारण इस प्राकृतिक क्रमिक विकास में बहुधा बाधा पड़ने लगती है। विकासवादी व्यवस्था का उद्देश्य उन कृत्रिम बाधाओं को दूर कर सभी को प्राकृतिक क्रमिक विकास का अवसर प्रदान करना मात्र है।

संस्कृति संरक्षण के साथ मानव का विकास हमारा उद्देश्य है। संस्कृति के बिना मानव पशु-तुल्य है तथा मानव के बिना संस्कृति का अस्तित्व सम्भव नहीं है। विकास के लिए न्यूनतम आवश्यकताएँ पूर्ण करने हेतु संसाधन तथा अनुकूल परिस्थितियाँ होना अनिवार्य हैं। आधारभूत ढांचा उपलब्ध होने पर विकास करना सम्भव है। सफलता के लिए साधन तथा साधना दोनों अनिवार्य हैं तथा परस्पर पूरक भी। गणितीय भाषा में विकास में सफलता को साधन तथा साधना का गुणनफल कह सकते हैं। दोनों में किसी एक के शून्य होने पर परिणाम शून्य होगा परन्तु एक की कमी को दूसरे की अधिकता से पूरा कर सकते हैं। संसाधन अधिक हों तो कम साधना से ही सफलता मिल सकती है अर्थात् प्रयास तथा परिश्रम कम करना पड़ता है। यदि संसाधन कम हों तो अधिक प्रयास करने पर भी अल्प सफलता मिल सकती है।

न्यूनतम आवश्यकता के रूप में जीवन निर्वाह के लिए अनिवार्य संसाधन आवास शिक्षा, स्वास्थ्य के साथ भोजन, वस्त्र आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। इसके बिना उल्लेखनीय सफलता तथा विकास सम्भव नहीं है। इसके बाद नियमित तथा व्यवस्थित प्रयास अर्थात् साधना से सफलता मिल सकती है। साधना में धैर्य तथा विश्वसनीयता बनाये रखना भी आवश्यक है। इसके बिना अपेक्षित परिणाम नहीं मिल पाते हैं।

धर्म :- धर्म मानव की विचार शक्ति का प्रकाश है। मानव को अन्य प्राणियों से अलग करने वाली निर्णायक विभाजन रेखा धर्म ही है। यह नीतिशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र का समन्वय है। धर्मशास्त्र विषय से विज्ञान, शिक्षाशास्त्र, राजनीतिशास्त्र व अर्थशास्त्र का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रारम्भिक शिक्षा से विश्वविद्यालय तक एक विषय के रूप में धर्मशास्त्र का अध्ययन होना चाहिए।

सृष्टि का आदि एक है, चेतना एक है, धर्म एक है। धर्म का आधार व्यापक व वैज्ञानिक है, संकीर्ण नहीं। कोई भी विचार किसी समूह विशेष की निजी सम्पत्ति नही है। तटस्थ व वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सभी मान्यताओं का व्यापक अध्ययन धर्मशास्त्र विषय के अन्तर्गत सभी को करना चाहिए। धर्म के क्षेत्र में संकीर्णता जड़ता या अन्ध विश्वास का कोई स्थान नहीं है। धर्म का

प्रमुख उद्देश्य मानव का विकास करना है। मानव हित ही धर्म है, मानव उत्थान के लिए बनायी गयी व्यवस्था ही धर्म है, मानव को सुखी बनाने का मार्ग तथा प्रयास ही धर्म है। जिससे मनुष्य का अभ्युदय हो, उसे सुख-शान्ति प्राप्त हो, वही धर्म है। प्रत्येक व्यक्ति को सुखी बनाना धर्म का परम लक्ष्य है। धर्म का विकास मानव के सुख-शान्ति के लिए हुआ है।

संसार का प्राचीनतम साहित्य वेद ही धर्म संस्कृति का मूल स्रोत है। सभी धर्म पन्थ, देश-काल-परिस्थिति के अनुकूल उसी मूल धर्म को प्रतिष्ठित करने हेतु स्थापित हुए। सिद्धान्त रूप में कहा जा सकता है कि यदि वेद तथा उसकी भाषा वैदिक संस्कृत का व्यापक प्रचार-प्रसार होता रहता तो मानव के मार्गदर्शन के लिए वह पर्याप्त था। यह भी तथ्य है कि कुरआन आदि ग्रन्थों की मूल मान्यताएँ एकेश्वरवाद, मानवमात्र की समानता तथा निराकार ईश्वर की उपासना आदि वेद के अनुकूल हैं। धर्म ग्रन्थों की बातों में जो भेद प्रतीत होता है, वह देश-काल परिस्थिति की आवश्यकता के कारण है। अतः हम वेद को विश्व का प्राचीनतम साहित्य तथा भारतीय संस्कृति का मूल होने के कारण केन्द्रीय स्थान देते हुए व्यापक विश्व संस्कृति में करोड़ों लोगों द्वारा मूल स्रोत के रूप में मान्य सभी ग्रन्थों को सम्मानजनक स्थान प्रदान करते हैं।

एकता समरसता :- मानवमात्र के प्रति एकता तथा समरसता की भावना धर्म का प्रमुख तत्व हैं। जन्म के आधार पर कोई भेदभाव न हो, विचारधारा के कारण द्वेषभाव न हो तथा पद, सम्पत्ति के अनुसार वर्ग-भेद न माना जाये, यही वैदिक संस्कृति है, विश्व धर्म है, सांस्कृतिक मानव विकासवाद का मूल तत्व है। विश्व धर्म, वैदिक संस्कृति तथा मानव विकासवाद मूलतः एक ही सिद्धान्त हैं। वेद प्राचीनतम ग्रन्थ है, आदि ग्रन्थ है तथा देश-काल परिस्थिति के अनुसार वही ज्ञान विश्व धर्म के अन्य ग्रन्थों में प्रकट हुआ एवम् उनके प्रकाश से मानवमात्र के उत्थान का मार्ग खोजने का प्रयास किया तो मानव विकासवाद का सिद्धान्त प्राप्त हुआ।

हम पूर्णतः तर्क संगत चिन्तन तथा कार्यकारण सिद्धान्त को मान्यता देते हैं। हम विज्ञान की अन्य शाखाओं की भाँति मनोविज्ञान तथा मनः शक्ति पर भी

विश्वास करते हैं तथा सर्वोच्च मनोविज्ञान के रूप में अध्यात्म शक्ति एवम् आत्मबल-मनोबल का महत्व भी स्वीकार करते हैं, परन्तु किसी चमत्कार आदि के नाम पर अन्धविश्वास को अस्वीकार करते हैं।

साधन तथा साधना :- मानव विकास के लिए साधन तथा साधना दोनों आवश्यक हैं। साधन शून्य हों तो साधना नहीं हो सकती है। निर्वाह के लिए न्यूनतम आवश्यकता पूर्ण करने के लिए समुचित साधन तो होने ही चाहिए। साधन कम हों तो साधना अर्थात् प्रयास-परिश्रम अधिक करना पड़ता है। साधन बहुत अधिक हों तो कम साधना से अधिक परिणाम प्राप्त हो सकता है। परन्तु साधना के बिना साधन कुछ नहीं कर सकते तथा साधन के बिना साधना भी सफल नहीं हो सकती है। साधन तथा साधना के संयोग से ही कार्य सम्पन्न हो सकते हैं।

मूल तत्व :- सृष्टि का मूल तत्व परमात्मा चेतन सत्ता है। सम्पूर्ण सृष्टि उसी का विकसित परिवर्तित स्वरूप है। उसके चेतन आवेषण से ही जीवन और प्राणशक्ति से मन-बुद्धि तथा उससे चिन्तन एवम् कर्म सम्भव होते हैं। इस प्रकार ऋत अर्थात् व्यापक प्राकृतिक नियम के अनुसार जो कुछ भी होता है उसका मूल आधार तो परमात्मा है। जीव में विद्यमान परमात्मा की वह चेतन शक्ति ही आत्मा है।

कर्म स्वतन्त्रता :- व्यावहारिक रूप में जीव का प्रत्यक्ष स्वतन्त्र स्वरूप अनुभव करते हुए कह सकते हैं कि जीव में सक्रिय चेतन शक्ति परमात्मा ही है। प्रत्येक कार्य का उत्तरदायी उस चेतना का उपयोग कर कार्य करने वाला मस्तिष्क ही है। परमात्मा किसी भी कर्म के लिए प्रत्यक्ष उत्तरदायी नही है। कार्य तथा परिणाम के लिए हमारे अपने प्रयास तथा परिस्थितियाँ उत्तरदायी हैं। हमें दूसरों के कर्मों के परिणाम भी प्रभावित करते हैं। सज्जनों तथा दुर्जनों के कार्य समाज को प्रभावित करते हैं। इसके लिए प्रभावित होने वाले लोग उत्तरदायी नहीं होते हैं।

समुद्र में लहरें उठना प्राकृतिक प्रक्रिया है। इससे किसी का लाभ होता है तथा किसी को हानि। वर्षा प्राकृतिक प्रक्रिया है। इससे किसी की फसल को

लाभ होता है तो किसी का घर ध्वस्त हो जाता है। इसके लिए प्रभावित होने वाले व्यक्ति के कर्म उत्तरदायी नहीं हैं। हम ऋतु का अनुमान लगाकर सावधान तो हो सकते हैं, उसके प्रभाव से पूरी तरह बच नहीं सकते हैं। लाभ-हानि के परिणामों के लिए वर्षा तथा समुद्र को उत्तरदायी नहीं ठहरा सकते हैं क्योंकि वह तो प्राकृतिक प्रक्रिया है। समुद्र या बादल किसी को लाभ-हानि पहुँचाने या कर्मों का फल देने के लिए कुछ नहीं करते हैं।

मान्यताओं को तर्क, विवेक तथा कार्यकारण सिद्धान्त अर्थात् सार्वभौम प्राकृतिक नियम ऋत के आधार पर ही स्वीकार करना उचित है। आस्था-श्रद्धा के नाम पर तर्क संगत चिन्तन-मनन किये बिना कोई निर्णय नहीं लिया जाना चाहिए तथा तर्कहीन बातों को स्वीकार नहीं करना चाहिये। तथ्यों पर आधारित तर्क तथा विवेक सम्मत मान्यताएँ तथा आचरण ही मानव धर्म है। वैदिक ऋत सिद्धान्त की मूल प्रेरणा यही है तथा वैदिक संस्कृति की मूल मान्यता भी।

सतत विकास प्रक्रिया :- विकास निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। विकास स्वाभाविक है तथा समय साध्य भी। साधन तथा साधना द्वारा हम इसमें लगने वाले समय को कम कर सकते हैं, परन्तु कुछ समय लगना अनिवार्य है। समुचित समय तक प्रयास करना तथा धैर्य बनाये रखना आवश्यक है। सतत् विकास प्रक्रिया में सफलता क्रमशः मिलती रहती है। यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि अचानक किसी क्षण आकस्मिक सफलता मिल जायेगी। बीज को वृक्ष बनकर फल देने के लिए अंकुरण तथा विकास की प्रक्रिया का अनुगमन करना पड़ता है। यह सम्भव नहीं है कि बीज अचानक फलदायी विशाल वृक्ष बन जाये।

उत्पादकता सिद्धान्त :- उत्पादक कार्यों को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिए। जिनसे सम्पदा तथा धन अर्थात् पूँजी का सृजन हो, उसे उत्पादक कार्य माना जाना चाहिए। खनिज, ऊर्जा, यन्त्र निर्माण आदि आधारभूत तथा प्रमुख उद्योगों में उत्पादकता का गुण अधिकतम है। मानव की आधारभूत आवश्यकताएँ तथा विकास के लिए आवश्यक संसाधन उत्पन्न करना उत्पादक कार्य माने जाने चाहिए। पचास प्रतिशत व्यय उत्पादक कार्यों में ही करना

चाहिए।

उपयोगिता सिद्धान्त :- प्रत्यक्ष उत्पादक न होते हुए भी उसके लिए अनिवार्य तथा सहायक कार्यों में उपयोगिता का गुण होता है। शिक्षा, प्रशिक्षण शोध, स्वास्थ्य सेवायें, सुरक्षा तथा नागरिक सविधायें ऊर्जा, परिवहन, पेयजल आदि इसी श्रेणी के कार्य हैं। इनका विकास उत्पादकता के लिए आवश्यक है। इनका अधिकतम उपयोग उत्पादकता के लिए करना चाहिए। उपयोगिता कार्यों में तीस प्रतिशत तक व्यय करना चाहिए।

सहभागिता :- परस्पर सहयोग करना तथा सुख-दुःख में सहभागी होना मानवता का प्रमुख कर्तव्य है। सहभागिता सिद्धान्त का प्रमुख तत्व है कि अपनी वस्तु पर स्वत्वाधिकार बनाये रखते हुए सामाजिक हित के लिए उसे प्रस्तुत करना तथा सार्वजनिक कार्य में अपनी क्षमता के अनुसार दायित्व वहन करना।

समाज व्यवस्था :- सभी प्रकार के सामाजिक भेदभाव समाप्त किये जाने चाहिए। जन्मगत जाति के आधार पर भेदभाव, साम्प्रदायिक या धार्मिक पन्थ के आधार पर द्वेषभाव, विचारधारा के आधार पर विरोध अथवा आर्थिक स्थिति के आधार पर असमानता की भावना समाप्त की जानी चाहिए। सामाजिक एकता-समरसता का लक्ष्य पाने के लिए सभी जातियों-समुदायों के बीच भोजन-विवाह सम्बन्धों को प्रोत्साहन देना चाहिए।

अर्थ व्यवस्था :- अर्थ व्यवस्था अपने संसाधनों तथा आवश्यकताओं के अनुसार सन्तुलित होनी चाहिए। बचत तथा लाभ के लक्ष्य को प्रेरणा बनाना चाहिए तथा घाटे एवम् ऋण आधारित अर्थव्यवस्था से यथासम्भव बचना चाहिए। घाटे की अर्थ व्यवस्था मुद्रास्फीति को बढ़ावा देती है तथा पूरे अर्थतन्त्र के आधार को क्षति पहुँचाती है। बचत तथा लाभ की अर्थव्यवस्था से ही आर्थिक आधार सुदृढ़ होता है तथा स्थिरता आती है। मुद्रास्फीति पर पूर्ण नियन्त्रण होना चाहिए तथा मूल्य लगभग स्थिर होने चाहिए। अनुत्पादक तथा अनुपयोगी व्यय पर अंकुश लगाकर ऐसा करना सम्भव है।

व्यावहारिकता सिद्धान्त :- मौलिक आवश्यकताओं आवास, भोजन,

स्वास्थ्य सेवाएँ, शिक्षा-सामग्री पुस्तकें आदि के अतिरिक्त सभी वस्तुओं की मूल्य नीति व्यावहारिक आधार पर तय होनी चाहिए। जिस वस्तु की उपलब्धता मांग से कम हो, उसका मूल्य मुक्त अर्थव्यवस्था के आधार पर ही निश्चित होना चाहिए, उसकी उपयोगिता कितनी भी अधिक क्यों न हो। मांग से कम उपलब्ध वस्तु का मूल्य कम होना भ्रष्टाचार को खुली छूट देना है। लोग अधिकतम जितना मूल्य देने के लिए तैयार हों, अर्थात् उपलब्ध वस्तु का अधिकतम जितना मूल्य मिल सकता हो, उतना मूल्य लिया जाना चाहिए। शासकीय अनुदान (सब्सिडी) देकर मूल्य कम करने का लाभ उपभोक्ता को नहीं मिलता है, उसे वह मूल्य रिश्वत के रूप में देना पड़ता है।

अतः उचित है कि वह सीधे उसका उचित मूल्य भुगतान करें। इस उचित मूल्य से प्राप्त आय का उपयोग उस वस्तु का उत्पादन बढ़ाने में कर सकते हैं जिससे उसकी उपलब्धता बढ़े और अधिकतम लोगों को सुलभ हो। इससे भ्रष्टाचार, दलाली और कालाबाजारी पर स्वाभाविक अंकुश लगेगा।

कर प्रणाली :- उत्पादकता तथा उपयोगिता को प्रोत्साहन देना, नीति तथा कर प्रणाली का मुख्य मार्गदर्शक सिद्धान्त होना चाहिए। स्वास्थ्य के लिए हानिकारक तम्बाकू तथा मद्य आदि मादक पदार्थों पर अधिकतम कर होना चाहिए। प्रयास किया जाना चाहिए कि इनसे प्राप्त कर-राजस्व से सभी को निःशुल्क स्वास्थ्य सेवायें उपलब्ध करायी जा सकें। मनोरंजन तथा विलासिता की वस्तुओं तथा सेवाओं पर भी अधिकतम कर लगाकर उससे प्राप्त राजस्व से नागरिकों की न्यूनतम आवश्यकतायें आवास, भोजन, वस्त्र, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा नागरिक सुविधायें ऊर्जा, मार्ग, परिवहन, विद्युत, पेयजल, स्वच्छता, सुरक्षा आदि पूर्ण की जानी चाहिए।

प्रत्यक्ष कर :- आयकर पूरी तरह समाप्त होना चाहिए तथा उसके स्थान पर सम्पत्ति कर लगना चाहिए। अचल सम्पत्ति भूमि-भवन तथा वाहन, टेलीफोन, पूँजी निवेश आदि को छिपाना सम्भव नहीं होगा। इससे कर चोरी रुक जायेगी तथा यदि किसी को शिक्षा, चिकित्सा जैसे उपयोगी कार्यों में व्यय करना पड़ रहा है अथवा कोई व्यक्ति निजी सम्पत्ति बढ़ाने के स्थान पर लोकसेवा तथा

परोपकार में धन व्यय करता है तो उसे उस धन पर स्वतः कर मुक्ति प्राप्त हो जायेगी।

शासन :- लोकतान्त्रिक शासन को जनता के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए, किसी दल या नेता के प्रति नहीं। जनप्रतिनिधि तथा विधायिका (लोकसभा, राज्यसभा, विधानसभा, विधान परिषद् आदि) को निर्धारित अवधि तक स्थायी होना चाहिए। जन जनप्रतिनिधियों को अपने दल के निर्देशों के विपरीत भी जनहित की बात उठाने का अवसर मिलना चाहिए परन्तु सत्ता तथा स्वार्थ के लिए निर्वाचन के समय दिये गये आश्वासनों तथा घोषणापत्र एवम् विचारधारा के विपरीत गठबन्धन या दल-बदल की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। किसी सरकार या शासन प्रमुख के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाकर अस्थिरता तथा शून्य उत्पन्न नहीं किया जाना चाहिए, अपितु आवश्यक होने पर वैकल्पिक नेता के समर्थन में विश्वास प्रस्ताव लाकर सत्ता परिवर्तन किया जा सकता है। किसी गठबन्धन के सत्ता में आने पर उसमें सम्मिलित दलों के घोषणापत्रों की समान बातों के आधार पर ही शासन चलाना चाहिए। इस प्रकार निर्वाचन घोषणापत्र को वैधानिक स्तर प्राप्त होगा।

प्रशासन :- लोक प्रशासन तन्त्र दायित्व निर्वाह के प्रति पूरी तरह उत्तरदायी होना चाहिए तथा उसे राजनीतिक अथवा अन्य किसी प्रकार के अनुचित हस्तक्षेप के विपरीत वैधानिक संरक्षण प्राप्त होना चाहिए। कार्य निष्पादन की प्रक्रिया सरल, समयबद्ध तथा जनसामान्य के प्रति उत्तरदायी होनी चाहिए। शासकीय कार्यालयों में निश्चित समय के भीतर कार्य निष्पादन करना वैधानिक रूप से भी अनिवार्य होना चाहिए।

विधि-व्यवस्था :- सस्ता, सुलभ तथा समय पर न्याय पाना जनता का मौलिक अधिकार है। संविधान तथा कानून यथा सम्भव न्यूनतम, सरलतम तथा स्पष्ट होना चाहिए जिससे सामान्य शिक्षित व्यक्ति भी उन्हें सरलता से स्वयं समझ सके तथा विधि विशेषज्ञों की सहायता पर निर्भर न रहे। अधिवक्ताओं की वैधानिक अनिवार्यता तथा मान्यता नहीं होनी चाहिए। वादकारी को अधिकार होना चाहिए कि वह किसी को भी अपना वाद सहायक या प्रतिनिधि नियुक्त

कर सके अर्थात् वादकारी किसी भी शुभचिन्तक को अपने साथ सहायता के लिए न्यायालय में सहायक-सहयोगी के रूप में ले जा सकता है अथवा किसी कारण से स्वयम् न उपस्थित हो पाने पर किसी प्रतिनिधि को अपने स्थान पर भेज सकता है, उसका अधिवक्ता या विधि विशेषज्ञ होना अनिवार्य नहीं है। उसकी भूमिका सीमित होगी तथा मुख्य भूमिका वादकारी स्वयम् निभायेगा।

जन सुरक्षा :- किसी अपराध की प्राथमिक सूचना लिखने वाला विभाग उसकी विवेचना करने वाले विभाग (पुलिस) से पूर्णतः पृथक् होना चाहिए। इससे प्राथमिकी न लिखने की शिकायत समाप्त हो जायेगी। प्राथमिकी विभाग तथा विवेचना विभाग पर न्यायपालिका का अङ्कुश होना चाहिए जिससे वह राजनीतिक हस्तक्षेप तथा प्रभावशाली लोगों के दबाव से मुक्त हो सके। यातायात तथा महत्वपूर्ण व्यक्तियों की सुरक्षा आदि विशेष कार्यों के लिए पृथक् सुरक्षा संगठन होने चाहिए जिससे अपराध-नियन्त्रण तथा जनसुरक्षा के कार्य प्रभावित न हों। इस प्रकार न्यायपालिका के अधीन प्राथमिकी विभाग, अपराध नियन्त्रण तथा जनसुरक्षा विभाग, यातायात विभाग एवम् विशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा विभाग पृथक् तथा परस्पर स्वतन्त्र बनाने होंगे।

शिक्षा-व्यवस्था :- पाठ्यक्रम सभी के लिए समान तथा पाठ्य-सामग्री तथ्य, तर्क प्रमाणों के आधार पर तैयार होनी चाहिए। भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्र में दो भारतीय भाषाएँ अनिवार्य होनी चाहिए। इसमें एक मातृभाषा हिन्दी, पञ्जाबी, उर्दू, तमिल, आदि तथा दूसरी प्राचीन भाषा, संस्कृत हो तो उत्तम है। विज्ञान, विश्व इतिहास, भूगोल में विश्व के प्रमुख राष्ट्रों, भाषाओं, सभ्यताओं का परिचय तथा पृथ्वी की संरचना का सामान्य ज्ञान भी सामाजिक विषय के रूप में अनिवार्य है। परन्तु गणित या विदेशी भाषा जैसे विषय अनिवार्य नहीं होने चाहिए। प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक कक्षाओं में दैनिक जीवन में उपयोगी सामान्य गणित का ज्ञान करा देना दिया जाना चाहिए, परन्तु माध्यमिक स्तर (कक्षा 8 के पश्चात्) गणित को अनिवार्य विषय नहीं होना चाहिए। सामाजिक विषय के रूप में देश तथा विश्व के सम्बन्ध में सामान्य ज्ञान को अनिवार्य विषय होना चाहिए।

छात्रों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाना चाहिए तथा पुस्तकें तथा शिक्षा-सामग्री निःशुल्क मिलनी चाहिए। उनके माता-पिता के आय के अनुपात में शिक्षाकर लिया जाना चाहिए। यह शिक्षा कर विद्यार्थी के माता-पिता की आय का प्रति छात्र पांच प्रतिशत तक हो सकता है। इससे निर्धन छात्रों की समस्या बहुत कुछ दूर हो जायेगी। अति निर्धन छात्रों के लिए सामाजिक सहयोग से भोजन, वस्त्र, आवास की भी व्यवस्था की जानी चाहिए। ऐसा होने पर ही सबको शिक्षित करने का लक्ष्य पूर्ण हो सकता है।

भाषानीति :- भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्र में भाषा नीति भी प्रमुख समस्या है। इसमें प्रमुख बात है कि भाषाएँ कितनी हों, कौन सी हों और उनका स्वरूप क्या हो। पूरे राष्ट्र में एक ही भाषा हो, यह आदर्श परिकल्पना तो हो सकती है, परन्तु व्यावहारिक नीति नहीं। इसी प्रकार यह भी व्यावहारिक नहीं है कि समस्त सार्वजनिक कार्य देश में प्रचलित सभी 21 या उससे भी अधिक भाषाओं में किये जायें तथा सभी व्यक्तियों को देश की सभी भाषायें सिखायी जायें। भारत में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षेत्रीय मातृभाषा के साथ राष्ट्रीय भाषा सीखनी चाहिए। जो लोग विदेशी भाषा सीखना चाहते हैं, उन्हें इसकी सुविधा मिलनी चाहिए परन्तु किसी भी स्तर पर कोई विशेष विदेशी भाषा जैसे अंग्रेजी अनिवार्य नहीं होनी चाहिए।

राष्ट्रीय भाषा के रूप में सभी भाषाओं की जननी तथा मूलभाषा संस्कृत को स्वीकार किया जा सकता है। संस्कृत स्वाभाविक रूप से सभी भारतीय भाषाओं की सम्पर्क भाषा है। सभी भारतीय भाषाओं को संस्कृत से पोषण मिलता है। देश की सभी भाषाओं में पचास प्रतिशत से 85 प्रतिशत तक शब्द संस्कृत के ही हैं। अतः संस्कृत सीखना सभी भारतीयों के लिए सरल है।

विदेशी भाषा के रूप में केवल अंग्रेजी को महत्व देना उचित नहीं है। अंग्रेजी का वर्चस्व वास्तव में घातक है। अतः छात्रों के लिए अंग्रेजी नहीं, विदेशी भाषा एक विषय होना चाहिए। विदेशी भाषा विषय में कम से कम दो विदेशी भाषाएँ होनी चाहिए तथा उनको राष्ट्रीय भाषा संस्कृत के माध्यम से पढ़ाया जाना चाहिए। इससे वह राष्ट्रीयता तथा भारतीय संस्कृति से भी जुड़ा रहेगा

तथा अंग्रेजी के साथ अपनी रुचि के अनुसार कोई एक अन्य विदेशी भाषा अरबी, फारसी, हिब्रू, चीनी आदि भी सीख लेगा।

जटिल सामाजिक संरचना, स्थानीय तथा निजी परिस्थितियों की बाधाओं के कारण कुछ लोग विकास से वंचित रहते हैं। ऋत सिद्धान्त का उपयोग कर सभी के विकास के अनुकूल अवसर उपलब्ध कराये जाने चाहिए। सिद्धान्त रूप में जन्म के आधार पर किसी को किसी प्रकार का आरक्षण नहीं मिलना चाहिए, यही प्राकृतिक न्याय का सिद्धान्त है। परन्तु धन सम्पत्ति व भूमि-भवन पैतृक सम्पत्ति के रूप में जन्म के आधार पर आरक्षित हो जाते हैं तथा समाज में प्रमुख सम्मान पाने वाले पुरोहित-पुजारियों के पद भी जन्मगत जाति के आधार पर अनेक शताब्दियों से आरक्षित हैं। अतः पैतृक सम्पत्ति के नाम पर आर्थिक आरक्षण तथा धर्म के क्षेत्र में लागू जातिगत आरक्षण भी समाप्त किया जाना चाहिए। ऐसा न हो पाने तक आवश्यक मानकर सामाजिक रूप से उपेक्षित वर्गों को विभिन्न क्षेत्रों में विशेष अवसर दिया जाना अनुचित नहीं कहा जा सकता है। 'सबको शिक्षा-संस्कार, सबको निश्चित रोजगार' को मौलिक अधिकार स्वीकार कर लिया जाए तो इस समस्या का एक सीमा तक व्यावहारिक समाधान हो सकता है।

महिलाओं के सन्दर्भ में भी यही दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। स्त्री या पुरुष को विशेषाधिकार देने वाले सभी सामाजिक तथा वैधानिक प्रावधान समाप्त होने चाहिए। नग्नता तथा पर्दा को एक समान बुराई माना जाना चाहिए। स्त्री को भी उतने कपड़े पहनकर रहने का अधिकार है जितने कपड़े पहन कर कोई पुरुष रह सकता है। स्त्री को पूरी तरह पर्दे में रहने के लिए बाध्य करना तथा पुरुष को मात्र लंगोटी लगाकर या पूर्ण नग्न घूमने का अधिकार देना अनुचित, भेदभावपूर्ण तथा अन्यायपूर्ण है।

2. विश्व धर्म :- संसार का प्राचीनतम साहित्य वेद है। अतः वेद को विश्व धर्म का मूल स्रोत माना जाता है। जिन ग्रन्थों ने मानव जाति को व्यापक रूप से प्रभावित किया है, जिनको करोड़ों लोगों का समुदाय अपने धर्म, दर्शन और संस्कृति का मूल स्रोत मानता है, उन ग्रन्थों को भी वेद या मूल ज्ञान के

समान प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए। इस प्रकार चार वेद (ऋक्, यजुः, साम, अथर्व), दो बाइबिल (पुराना नियम, नया नियम), त्रिपिटक, जेन्द अवेस्ता, कुरान तथा गुरु ग्रन्थ साहिब को विश्व धर्म के वेद या मूल आधार ज्ञान के ग्रन्थ कहा जा सकता है।

इस रूप में विश्वधर्म के अन्तर्गत उन सभी ग्रन्थों को मान्यता दी जा सकती है जिनको कोई व्यापक समुदाय अपना आदि ग्रन्थ मानता हो तथा उससे पूर्व के किसी ग्रन्थ को अपने समुदाय का धर्म ग्रन्थ न मानता हो। सनातन धर्म, आर्य धर्म या हिन्दू धर्म वेद को ही आदि धर्म ग्रन्थ मानता है। अतः उनके किसी अन्य ग्रन्थ को इसके अन्तर्गत नहीं माना जाना चाहिए।

परिजनों से अपेक्षा है कि यथा सम्भव इन सभी ग्रन्थों का स्वाध्याय करेंगे। कम से कम एक वेद, अपने समुदाय का मूल ग्रन्थ तथा कोई एक अन्य ग्रन्थ अपने घर में अवश्य रखें। इतना भी सम्भव न हो तो उक्त तीन ग्रन्थों के कुछ अंश तो घर में रखना तथा स्वाध्याय करना अनिवार्य ही है। जिस ग्रन्थ में जो भी उपयोगी जानकारी मिले, अपनी परिस्थिति के अनुसार उससे लाभ उठाया जाना चाहिए।

3. सर्वोत्थान :- प्रत्येक मानव का उत्थान होना चाहिए, यही हमारे सम्पूर्ण चिन्तन तथा प्रयासों की मूल भावना और प्रेरणा है। न्यूनतम आवश्यकता सभी की पूरी हो और इच्छानुसार विकास का अवसर मिले तो सभी का उत्थान हो सकता है।

4. समरसता :- इसे समत्व या समता भाव भी कह सकते हैं। किसी मानव के साथ कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए तथा सभी को सम्मान दिया जाना चाहिए। भोजन तथा विवाह में जातिगत भेदभाव समाप्त करना इसका चरम लक्ष्य है।

5. सहभागिता :- सामाजिक हितकारी कार्यों में भागीदारी की भावना सहभागिता है। धन देना पर्याप्त नहीं है। उस धन का उपयोग भी स्वयं करना चाहिए। बड़े कार्यों के किसी एक भाग का दायित्व स्वयं ले लें तथा 'तन-मन-धन' से उसे पूरा करें। इससे अपने अंशदान पर अधिकार भी बना रह सकता

है। किसी आयोजन के लिए, आसन, दीप, स्थान, उपकरण आदि अलग-अलग परिजन उपलब्ध करा दें तथा बाद में अपनी वस्तुएँ वापस ले जाएँ, यह भी सहभागिता है। इसी प्रकार से एक-एक कार्य का व्यय तथा श्रम का दायित्व ले लें तथा स्वयं उसका निर्वाह करें तो सहभागिता सिद्धान्त के अनुसार कार्य सम्पन्न हो जायेगा। इससे विवाद उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं रहती है।

संस्कृति

विश्व संस्कृति का ज्ञान विश्वधर्म के मान्य ग्रन्थों से हो सकता है। उन ग्रन्थों की भाषा दर्शन, इतिहास, जीवन प्रणाली का अध्ययन का लाभ उठाया जाय तो अच्छा ही है। भारत के लिए भारतीय संस्कृति के महत्व को स्वीकार किया ही जाना चाहिए। भारतीय संस्कृति के पाँच मूल तत्व वेद, योग, संस्कृत, इतिहास, दर्शन हैं।

1. वेद :- चार मन्त्र संहिताओं ऋक्, यजुः, साम, अथर्व को वेद कहा जाता है। वेद का अर्थ है मूल ज्ञान। यह विश्व का प्राचीनतम तथा मानव जाति-विश्व धर्म का मूल और आदि ज्ञान का स्रोत है। भारतीय ग्रन्थ होने से हमारे लिए तो और अधिक महत्वपूर्ण है। वेद शुद्ध विज्ञान है। ऋत का ज्ञान भी हमें वेद से ही मिला है। वेद से प्राप्त शुद्ध विज्ञान का उपयोग कर व्यावहारिक लाभ उठाया जा सकता है। सम्पूर्ण वैज्ञानिक प्रगति का मूल भी वेद ही है।

ब्रह्म, ऋत तथा सत्य वेद की तीन प्रमुख मान्यताएँ हैं। ब्रह्म को सृष्टि का मूल तत्व माना गया है। उसी से सम्पूर्ण सृष्टि विविधतापूर्ण रूप में विकसित हुई है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि 'ब्रह्म' समाज में प्रचलित तमाम देवी-देवताओं या ईश्वर से भिन्न है। ब्रह्म चिन्तन, तर्क और विज्ञान का विषय है। वह आस्था पर निर्भर नहीं है।

सत्य का अर्थ है, अस्तित्व का स्थायी होना। ब्रह्म परम सत्य है। यह कभी भी और किसी भी प्रकार से नष्ट नहीं हो सकता है। उसी से विकसित सृष्टि भी सत्य ही है, सत्य से परे नहीं है। परन्तु सृष्टि की शक्तियाँ तथा वस्तुएँ ऋत के अनुसार बदल सकती हैं। यह सृष्टि के सत्य की सीमा है। सृष्टि में सब कुछ

उस समय तक सत्य या स्थायी है, जब तक किसी ऋत का उपयोग करके उसके रूप या स्थान में परिवर्तन नहीं किया जाता है।

इसे एक उदाहरण से समझने का प्रयास करें। हमारे सम्मुख एक पात्र में जल रखा हुआ है। यह एक सत्य है। हमारे समक्ष वह पात्र और उसमें रखा जल तब तक सत्य है जब उस पर किसी ऋत का प्रयोग न किया जाए। यदि उस पात्र को कोई व्यक्ति उठा ले जाए तो 'हमारे सम्मुख पात्र में जल रखा है' यह सत्य नहीं रह जायेगा। इसी प्रकार यदि उस पात्र को आग पर रख दिया जाए तो कुछ समय के बाद पात्र का जल भाप बनकर उड़ जायेगा तथा 'पात्र में जल है' यह नित्य नहीं रह जायेगा। ऐसा ऋत के कारण ही होगा। एक ऋत या व्यापक नियम है कि बल का प्रयोग कर वस्तु का स्थान परिवर्तन हो सकता है तथा दूसरा ऋत है कि आग से ऊष्मा पाकर जल कुछ समय में भाप बन जाता है। दोनों ऋत का प्रयोग कर 'हमारे सम्मुख पात्र में जल है' इस सत्य को परिवर्तित किया गया। जब तक इनमें से किसी ऋत का प्रयोग नहीं किया जाता तब तक 'हमारे सम्मुख पात्र में जल है' यह सत्य स्थायी रहता है। इसी 'सत्य' के सिद्धान्त का प्रयोग कर भूगोल, खगोल तथा विज्ञान के अनेक विषयों का विकास हुआ। संक्षेप में कह सकते हैं कि सत्य वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार कोई वस्तु, शक्ति या स्थिति तब तक स्थायी रहती है, जब तक किसी ऋत का प्रयोग समाज में प्रचलित सच-झूठ की धारणा से अलग है। वेद में 'सत्य' एक सिद्धान्त है।

ऋत सिद्धान्त का मूल भाव हम समझ चुके हैं। ऋत का सिद्धान्त सम्पूर्ण सृष्टि में व्यापक है। जो ऋत या प्राकृतिक मूल नियम एक स्थान पर कार्य करते हैं, वही सभी स्थानों ग्रह-नक्षत्रों तक लागू होते हैं। इसीलिए तर्क संगत अनुमान सही होते हैं। जो कुछ भी घटित होता है, वह ऋत के अनुसार ही होता है। इसका अर्थ यह भी है कि यदि कभी भी कोई घटना सम्भव हुई है तो उसके कारण रहे ऋत को जानकर पुनः उसे सम्भव किया जा सकता है। ऐसा नहीं हो सकता है कि कभी किस व्यक्ति ने कोई कार्य सम्भव कर दिखाया हो तथा पुनः कोई व्यक्ति वैसा न कर सके।

ब्रह्म से ऋत उत्पन्न हुआ है और ऋत से सत्य, यही मूल वैदिक दर्शन है। इसके अनुसार सृष्टि सत्य है तथा ब्रह्म परम सत्य है। सृष्टि का सत्य होना ऋत पर निर्भर है।

2. योग :- योग चेतना विज्ञान है। यह व्यक्तित्व विकास का साधन तथा जीवन जीने की कला है। योग का लाभ उठाकर हम दुःख, चिन्ता तथा तनाव से मुक्त रह सकते हैं। यह बहुत ही सरल तथा सर्व सुलभ मार्ग है। पूर्व प्रकाशित पुस्तक अष्टांग योग परिचय में इसकी जानकारी दी जा चुकी है। योग के सैद्धान्तिक ज्ञान की आवश्यकता कम है तथा उससे लाभ उठाना उपयोग से ही सम्भव है।

3. संस्कृत :- संस्कृति की रक्षा तथा प्रचार-प्रसार भाषा के माध्यम से ही सम्भव है। अतः संस्कृति की मूल भाषा का ज्ञान होना भी आवश्यक है। भारतीय संस्कृति की मूल भाषा वैदिक संस्कृत है। अतः संस्कृत भाषा का ज्ञान तथा प्रचार हमारा कर्तव्य है। घर में वैदिक संस्कृत शब्द कोश रहना चाहिए। आवश्यक व्याकरण बहुत सरल है और चार-पाँच घण्टों में सीखी जा सकती है।

शब्द रूप, धातु रूप तथा व्याकरण सूत्रों को छोड़कर सरल ढंग से केवल छह घण्टे में संस्कृत व्याकरण सिखाने की प्रणाली दो दशक पूर्व पूरी तरह से विकसित हो चुकी थी। उसका लेख के रूप में प्रकाशन भी हो चुका है। आधुनिक लकार प्रणाल, सहायक क्रियाएँ, कारक प्रत्यय आदि का प्रयोग कर सरलतापूर्वक संस्कृत सीखी जा सकती है। अभ्यास और प्रयोग-प्रयास द्वारा धीरे-धीरे योग्यता बढ़ायी जा सकती है।

4. इतिहास :- संस्कृति का साकार प्रेरणा स्रोत इतिहास ही होता है। इसी से प्रमाणित हो सकता है कि महान् संस्कृति केवल पुस्तकीय सिद्धान्त है या उसे व्यवहार में उतारा भी गया है। भारतीय इतिहास के पितामह ब्रह्मा माने जाते हैं। अतः भारतीय इतिहास का प्रारम्भ ब्रह्मा से ही किया जाना चाहिए। यदि उस समय से क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं है तो खोज का प्रयास होना चाहिए। इस क्षेत्र में भी हमें उल्लेखनीय सफलता मिली है। दैनिक जागरण,

आगरा संस्करण के 'शनिवासरीय' तथा 'सरगम' शीर्षक से प्रकाशित साप्ताहिक परिशिष्टों में सवा वर्ष तक 'काल प्रवाह' साप्ताहिक स्तम्भ जनवरी 1996 ई. के प्रथम शनिवार से प्रारम्भ होकर 12 मार्च, 1997 ई. बुधवार तक लगातार प्रकाशित हुआ था। उसमें जल प्रलय के महानायक वैवस्वत मनु से प्रारम्भ कर सिद्धार्थ गौतम बुद्ध के समय तक का इतिहास क्रमबद्ध तथा तार्किक रूप से प्रस्तुत किया गया था। उसका प्रकाशन पुस्तक के रूप में भी किया जाना है।

5. दर्शन :- भारतीय संस्कृति का प्राण ऋत दर्शन ही है। इसीलिए भारतीय संस्कृतिक प्राचीनतम, सर्वश्रेष्ठ, उदार, सर्वग्राही तथा विश्वमान है। ऋत को जानना, समझना, चिन्तन मनन तथा जीवन में उतारना हम सभी का कर्तव्य है। इसका प्रचार परिजनों का दायित्व है।

संस्कार

संस्कृति को व्यावहारिक बनाने, जीवन में उतारने तथा स्थायी रूप देने के लिए संस्कार प्रणाली को अपनाया गया है। प्राचीन ग्रन्थों में चालीस संस्कारों का उल्लेख है। बाद में सोलह संस्कारों को प्रमुखता दी गयी। वर्तमान समय की आवश्यकता के अनुरूप हमने पाँच संस्कारों को अधिक महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य माना है। सभी संस्कार किसी भी आयु में हो सकते हैं। संस्कार कराने वाले पुरोहित को वेद का विद्वान् लोभ रहित समर्पित लोकसेवी होना चाहिए। ऐसे वैदिक संस्कृति के प्रति समर्पित जीवन दानी विद्वान् पुरोहित को बुलाकर उनसे वेद पाठ तथा वेद मन्त्रों की व्याख्या करायी जानी चाहिए। सभी संस्कारों में पुरोहित को वेद संहिता का दान किया जाना चाहिए। दान में प्राप्त वेद ग्रन्थ का उपयोग पुरोहित अपनी इच्छा के अनुसार कर सकेगा। यदि पुरोहित किसी से धन लेकर भी दान में मिले वेद ग्रन्थ को देता है तो भी वह वेद प्रचार ही करता है। यह भी सराहनीय कार्य होगा। पुरोहित को भोजन-वस्त्र भी दिया जा सकता है, किन्तु धन नहीं देना चाहिए।

भारतीय संस्कृति का मूल वेद है, अतः प्रत्येक संस्कार में वेद स्थापना, वेद पाठ, वेद मन्त्र व्याख्या तथा प्रसाद के रूप में वेद सूक्त वितरण किया जाता है। विश्व धर्म के अन्य ग्रन्थों को ऐसा ही सम्मान दिया जाए तो सराहनीय

माना जायेगा। पारसी, बौद्ध, यहूदी, जैन, ईसाई, मुस्लिम, सिख आदि पन्थों को मानने वाले यदि अपने-अपने समुदाय के मूल धर्मग्रन्थों को संस्कारों में प्रमुखता दें तो उसे उचित ही माना जाएगा। यह अधिक उचित होगा कि प्राचीनतम ग्रन्थ वेद, नवीनतम ग्रन्थ गुरु ग्रन्थ साहब तथा एक ग्रन्थ अपने समुदाय का रखें तो विश्व धर्म की मूल भावना की रक्षा होती रहेगी। वैदिक तथा सिख परिजनों से अपेक्षा है कि वे भी वेद तथा गुरु ग्रन्थ साहब के साथ अपनी रुचि के अनुसार विश्व धर्म का कोई तीसरा ग्रन्थ अवश्य रखें।

1. वेद स्थापना :- नये घर में प्रवेश के समय सबसे पहले वेद स्थापना संस्कार होना चाहिए। उस समय चारों वेद संहिताओं ऋक्, यजुः, साम, अथर्व के प्रथम तथा अन्तिम सूक्तों का पाठ तथा उन मन्त्रों की व्याख्या होनी चाहिए। सम्भव हो सम्पूर्ण वेद पाठ भी करें। आमंत्रित परिजनों को प्रसाद के रूप में कम से कम एक वेद सूक्त वितरित करें।

2. नामकरण :- नवजात शिशु के जन्मोत्सव के अवसर पर नामकरण संस्कार किया जाना चाहिए। शिशु का नाम सार्थक तथा यथा सम्भव वैदिक शब्दों में ही रखना चाहिए। निरर्थक या विदेशी शब्दों में नाम नहीं रखने चाहिए। वेद स्थापना तथा चारों वेद संहिताओं के प्रथम तथा अन्तिम सूक्तों के पाठ के बाद पुरोहित शिशु के माता पिता की सम्मति से उसके नाम की घोषणा तथा उस नाम के अर्थ की व्याख्या करे। जन्मोत्सव के समय नामकरण संस्कार नहीं हो सका हो तो बाद में सुविधानुसार कभी भी या प्रथम जन्म दिवस के समय कर दें।

3. जन्म दिवस :- समाज में जन्म दिवस समारोह का व्यापक प्रचलन है। युगाब्द सम्वत् तथा भारतीय काल पञ्चांग के अनुसार जन्म तिथि पर प्रति वर्ष जन्म दिवस संस्कार होना चाहिए। वेद स्थापना-वेद पाठ के पश्चात् स्वस्तिवाचन तथा शान्ति प्रकरण के वेद मन्त्रों से जन्मदिवस संस्कार कराने वाले व्यक्ति को शुभ कामना देते हुए अभिनन्दन करें। प्रसाद के रूप में वेद सूक्त वितरण किया जाए।

इस अवसर पर पिछले जीवन की समीक्षा करते हुए आगामी वर्ष में

व्यक्तित्व का और अच्छा विकास करने के लिए समयबद्ध कार्यक्रम बनाएँ। संस्कार के समय कम से कम एक बुराई छोड़ने तथा एक नया सद्गुण विकसित करने का भी संकल्प लें। जन्म दिवस संस्कार प्रत्येक व्यक्ति को सुसंस्कृत और महान् बना सकता है।

4. वेदारम्भ :- किशोरावस्था में प्रवेश से पूर्व वेदारम्भ संस्कार कर दिया जाना चाहिए। यदि उस समय न हो सका हो तो किसी भी आयु में और किसी भी दिन किया जा सकता है। इस संस्कार के समय अक्षर ज्ञान अवश्य होना चाहिए। वेदारम्भ संस्कार के दिन प्रारम्भ कर प्रतिदिन नियमित रूप से वेद पाठ चारों संहिताओं का पाठ पूर्ण होने तक करें।

पुरोहित वेद स्थापना - वेद पाठ के पश्चात् जिसका वेदारम्भ संस्कार होना हो, उससे ऋग्वेद संहिता के प्रथम सूक्त का पाठ अपने निर्देशन में कराए तथा वेद पाठ करने तथा अर्थ व व्याख्या के विषय में उपदेश दे। पुरोहित के साथ सभी लोग स्वस्ति वाचन मन्त्रों से वेदारम्भ संस्कार कराने वाले व्यक्ति को सफलतापूर्वक वेद पाठ पूर्ण करने के लिए शुभकामनाएँ दें। अन्त में प्रसाद के रूप में वेद सूक्त वितरण किया जाए।

5. समापवर्तन :- वेदारम्भ संस्कार से प्रारम्भ हुआ वेद पाठ पूर्ण होने पर समापवर्तन संस्कार करना चाहिए। इसमें वेद स्थापना तथा वेद पाठ स्वयं संस्कार कराने वाला व्यक्ति ही करे। पुरोहित केवल मार्गदर्शन ही करेगा। समापवर्तन संस्कार कराने वाला व्यक्ति अपने प्रिय वेद सूक्तों का स्वयं पाठ करे तथा उनकी व्याख्या भी करे। पुरोहित के साथ अन्य लोग स्वस्ति वाचन कर उसे बधाई दें तथा उसे योग्य विद्वान पुरोहित बनने के लिए शुभकामनाएँ दें। अन्त में प्रसाद के रूप में वेद सूक्त का वितरण किया जाए।

समापवर्तन संस्कार के बाद वह व्यक्ति द्विज हो जाता है। द्विज शब्द का अर्थ है दूसरा जन्म। माँ के गर्भ से एक जन्म शरीर का होता है तथा वेदमाता के गर्भ से दूसरा जन्म होने पर उसे द्विज कहा जाता है। इस प्रकार द्विज बन चुका व्यक्ति ही पुरोहित हो सकता है। मनु स्मृति के अनुसार जन्म से सभी शूद्र होते हैं तथा एक ही संस्कार वेद पाठ समापवर्तन से द्विज बन जाते हैं। नित्य

पाठ किये जाने वाले अथर्व वेद के मन्त्र वेद स्तुति 'स्तुतामया वरदा वेदमाता ...' के अनुसार द्विज बनाने वाली माता वेदमाता ही है। द्विजों की माता वेद ही है।

समय

जीवन का मापन समय से ही होता है। समय का महत्व सर्वोपरि माना जाना चाहिए। इसी दिशा में परिजनों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए समय पंचामृत को भी अष्टक में सम्मिलित किया गया है। समय की गणना पाँच इकाइयों में की जाती है।

1. दिन :- एक सप्ताह में सात दिन होते हैं। उनके नाम रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि रखे हुए हैं। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का समय एक दिन या अहोरात्र कहा जाता है।

2. तिथि :- तिथियों के अलग-अलग कुल सोलह नाम रखे गये हैं। वे प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस्या तथा पूर्णिमा है। प्रतिपदा से अमावस्या तथा प्रतिपदा से पूर्णिमा तक क्रमशः उक्त तिथियाँ होती हैं। सैद्धान्तिक ज्योतिर्विज्ञान की दृष्टि से तिथियों की अवधि की सूक्ष्म गणना की जाती है जो जन सामान्य के लिए दुर्बाध तथा अव्यवहारिक है। अतः उदया तिथि का सिद्धान्त प्रचलित हुआ है। इसके अनुसार सूर्योदय के समय जो तिथि होती है, आगामी सूर्योदय तक वही तिथि मानी जाती है। इसीलिए कभी-कभी तिथि का लोप भी हो जाता है तथा कोई तिथि लगातार दो दिन मानी जाती है। अतः व्यावहारिक दृष्टि से यही उचित समझा गया कि एक सूर्योदय से आगामी सूर्योदय तक एक तिथि मानी जाए तथा प्रतिपदा से अमावस्या या पूर्णिमा तक सभी तिथियों को क्रमशः माना जाए। यदि कोई पक्ष चौदह दिन का ही है तो त्रयोदशी के बाद अमावस्या या पूर्णिमा मानी जाएगी।

3. पक्ष :- प्रतिपदा से अमावस्या या पूर्णिमा तक एक पक्ष होता है। एक पक्ष में चौदह या पन्द्रह दिन होते हैं। यह चन्द्रमा की गति पर निर्भर है।

पूर्णिमा पर चन्द्रमा पूर्ण गोलाकार दिखता है तथा अमावस्या पर नहीं दिखता है।

4. मास :- दो पक्ष का एक मास होता है। पूर्णिमा के बाद प्रतिपदा से अमावस्या तक कृष्ण पक्ष तथा अमावस्या के बाद प्रतिपदा से पूर्णिमा तक शुक्ल पक्ष होता है। चन्द्रमा द्वारा पृथ्वी की एक परिक्रमा की अवधि एक मास होती है। ये 12 होते हैं। उनके नाम चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, अग्रहायण (मार्गशीर्ष), पौष, माघ तथा फाल्गुन हैं।

5. वर्ष :- पृथ्वी द्वारा सूर्य की एक परिक्रमा की अवधि एक वर्ष है। यह समय बारह चन्द्र मासों से अधिक होता है। अतः इस अन्तर को पूरा करने के लिए तीन वर्ष के अन्तराल पर अधिमास होता है। वर्षों की गणना विभिन्न संवतों में की जाती है। हम प्राचीनतम ऐतिहासिक सम्वत् युगाब्द का प्रयोग करते हैं। इसका आरम्भ महाभारत युद्ध के बाद सम्राट युधिष्ठिर ने किया था। इस वर्ष युगाब्द 5117 तदनुसार विक्रम सम्वत् 2072 तथा ईस्वी 2016 है।

प्रतिकार

समाज में ऋत के प्रतिकूल तथा विकास में बाधक अनेक प्रचलन भी होते हैं। उनसे बचना आवश्यक होता है। ऐसी प्रथाएँ, परम्पराएँ, रूढ़ियाँ या प्रचलन देश काल परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं। यह निश्चित है कि ऐसी सभी समाज विरोधी मान्यताएँ ऋत सिद्धान्त के प्रतिकूल तथा व्यक्ति के विकास में बाधक होती हैं। इसी आधार पर इनका निर्धारण करना चाहिए। सबसे प्रमुख इस तरह की पाँच प्रथाओं को चुनकर उनके उन्मूलन का प्रयास करना चाहिए। पाँच से अधिक कुप्रथाएँ भी हो सकती हैं, उनका भी विरोध करना ही है।

हमारे देश में इस समय ऐसी प्रमुख पाँच समस्याएँ विदेशी भाषा, मादकता, अशिक्षा, अंधविश्वास तथा भेदभाव हैं। ये ही अन्य समस्याओं के मूल कारण भी हैं। इन समस्याओं के दूर हो जाने पर इनके स्थान पर अन्य समस्याओं को रखा जा सकता है।

1. विदेशी भाषा :- भारत में विदेशी भाषा अंग्रेजी को प्रमुखता मिलने से हीन भावना उत्पन्न हो रही है तथा लोगों के विकास में बाधा उत्पन्न हो रही है। विद्यार्थी को अपने मूल विषय से अधिक श्रम अंग्रेजी सीखने में करना पड़ता है जिससे वह अपने विषय में कम ध्यान दे पाता है। यदि यह समय तथा श्रम बचाया जा सके तो विज्ञान आदि में और अधिक प्रगति हो सकती है।

चीन, जापान, जर्मनी, रूस आदि देश अंग्रेजी से बचकर ही तेज प्रगति कर सके हैं। छोटा सा इजरायल भी अपनी भाषा के व्यावहारिक महत्व का उदाहरण है। इजरायल राष्ट्र बनने के समय पचास वर्ष पूर्व हिब्रू को राष्ट्र भाषा घोषित कर शासन, प्रशासन, शिक्षा तथा सूचना का माध्यम बना दिया गया। अखबार भी हिब्रू में निकलने लगे तथा रेडियो-टीवी प्रसारण में पूरी तरह हिब्रू आ गयी। कुछ ही वर्षों में हिब्रू विश्व की सशक्त जीवित भाषा हो गयी जबकि उसे सैंकड़ों वर्ष पूर्व मृत भाषा मान लिया गया था।

भारत में संस्कृत भाषा की वर्तमान स्थिति पचास वर्ष पूर्व की हिब्रू से करोड़ों गुना अधिक अच्छी है। जी हाँ, लाखों नहीं, करोड़ों गुना अधिक अच्छी है। संस्कृत में सैंकड़ों पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं जिनमें दैनिक पत्र भी सम्मिलित हैं। चन्दामामा जैसे लोकप्रिय बाल साप्ताहिक का संस्कृत संस्करण भी अन्य भाषाओं की तरह निकलता है। कई संस्कृत भाषी गाँव हैं, लाखों संस्कृत शिक्षक हैं, तथा करोड़ों लोग संस्कृत बोलने तथा समझने वाले हैं। भारत में अंग्रेजी भाषी लोगों की संख्या इससे भी बहुत कम हैं। अनिवार्य होने के कारण मजबूरी में लोग अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं या हीन भावना से ग्रस्त होने के कारण स्वयं को अलग दिखाने के लिए टूटी-फूटी अंग्रेजी झाड़ते हैं।

इजरायल का उदाहरण यह सिद्ध करता है कि अपनी मूल भाषा को सरलता से सीखकर प्रयोग किया जा सकता है जबकि विदेशी भाषा को पर्याप्त ज्ञान होने पर भी कठिनाई बनी रहती है। भारत के लोग आसानी से संस्कृत को तो व्यवहार में अपना सकते हैं, पर अंग्रेजी कभी अपनी नहीं हो सकती है। वैसे हम किसी भाषा को सीखने के विरोधी नहीं हैं। अंग्रेजी सहित अधिक से अधिक भाषाएँ सीखना अच्छा है, लेकिन शासन, प्रशासन, शिक्षा, न्याय, सूचना

तथा सम्पर्क की भाषा के रूप में किसी विदेशी भाषा को अनिवार्य कर देना व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के विकास में सदैव बाधक है।

2. अशिक्षा :- देश की आधे से अधिक जनसंख्या अशिक्षित है तथा उनमें भी अधिकांश निरक्षर हैं। अतः उनके लिए ज्ञान, संस्कार, विकास सम्भव ही नहीं है। निरक्षरता तथा अशिक्षा दूर करना हमारा कर्तव्य है।

3. अंधविश्वास :- किसी बात के कारण को जाने-समझे बिना उस पर विश्वास करना अन्धविश्वास है। यह ऋत का स्पष्ट विरोधी है। किसी को भी देवी-देवता मानकर पूजा करना और कार्य हो जाने की आशा करना एक अन्धविश्वास है तथा बिना विचार किये वास्तविक धर्म का भी विरोध करना दूसरा अन्धविश्वास है। अंग्रेजी के बिना प्रगति नहीं हो सकती है, यह भी अन्धविश्वास है तथा भारत से बाहर कोई सभ्यता नही है, यह भी अन्धविश्वास ही है। इस तरह से सैंकड़ों अन्धविश्वास समाज में प्रचलित हैं जो विकास में बाधक हैं। ऋत सिद्धान्त का प्रचार करके अन्धविश्वास दूर करना हमारा कर्तव्य है।

4. मादकता :- समाज और व्यक्ति के लिए मादकता या नशा बहुत अधिक घातक है। इसका कुछ प्रचलन तो सदैव रहा है तथा औषधि के रूप में भी मादक पदार्थों का प्रयोग होता रहा है। लेकिन धर्म के नाम पर भांग का प्रयोग तथा आधुनिकता के नाम पर शराब और सिगरेट का बढ़ता प्रचलन पूरे समाज को खोखला कर रहा है। पान मसाला गटखा सबसे अधिक प्रचलित जहरीला नशा है जो बच्चों को भी शिकार बना रहा है। इन मादक पदार्थों से अनेक रोग उत्पन्न हो रहे हैं। चरस, अफीम, स्मैक, ब्राउन शुगर, हेरोइन आदि अति घातक मादक पदार्थों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। इनको रोकने का प्रयास होना ही चाहिए।

5. भेदभाव :- किसी भी तरह का भेदभाव व्यक्ति और समाज में कुंठा, आक्रोश, तनाव उत्पन्न करता है जो विकास में बाधक है। इससे अपराध तथा अन्य समस्याएँ भी बढ़ती हैं। सामाजिक भेदभाव के अनेक रूप हैं। जाति, भाषा, क्षेत्र, सम्प्रदाएँ तथा स्त्री-पुरुष में भेदभाव इसके उदाहरण हैं। दहेज, पर्दा प्रथा,

बालिकाओं को शिक्षा न दिलाना भी इसी भेदभाव के ही विभिन्न रूप हैं। हमें हर प्रकार का भेदभाव दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

कार्यक्रम

विचार-सिद्धान्त को जन-जन तक पहुँचाने तथा उसे व्यवहार में लाने के लिए पाँच कार्यक्रमों को निरन्तर चलाते रहना आवश्यक समझा गया है। प्रत्येक छोटे बड़े कार्यक्रम आयोजन में वेद व विश्व धर्म पाठ, ऋत सिद्धान्त, मानव विकासवाद का विवेचन व्याख्यान होना चाहिए। साहित्य प्रसार तथा उपस्थिति ही इस बात का मापदण्ड हो सकती है कि हम कितने लोगों तक अपनी बात पहुँचा सके हैं। सामयिक विषयों सहित सभी विषयों पर विचार-व्याख्यान-ऋत पंचामृत के अन्तर्गत मान्य पाँच सिद्धान्तों मानव विकासवाद, विश्व धर्म, सर्वोत्थान, समरसता, सहभागिता के सिद्धान्तों के अनुसार ही किया जायेगा। सारा विवेचन ऋत सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में ही प्रस्तुत किया जायेगा।

कार्यक्रमों में दैनिक सत्संग, साप्ताहिक गोष्ठी, पाक्षिक व्याख्यान, मासिक प्रगति समीक्षा बैठक, युगाब्द नव सम्वत् तथा शरद पूर्णिमा पर विराट एवं सर्वांगपूर्ण सम्मेलन आयोजित करना सभी शाखा संगठनों के लिए अनिवार्य है। इन अवसरों पर चलाये जाने वाले कार्यक्रमों में पाँच कार्य प्रमुख माने गये हैं। अन्य अवसरों पर भी ये कार्यक्रम चलाये जा सकते हैं।

1. साहित्य :- विचारों-सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार का सबसे सशक्त तथा स्थायी माध्यम साहित्य ही है। अतः साहित्य का लेखन, सम्पादन, प्रकाशन तथा प्रसार सबसे प्रमुख कार्यक्रम है। हमारा उद्देश्य पुस्तकों का ढेर लगाकर बड़ा लेखक बनना नहीं है। लेकिन अपने विचारों, सिद्धान्तों तथा उद्देश्यों को स्पष्ट करने के लिए कुछ पुस्तकों का प्रकाशन आवश्यक है। इस पंचामृत अष्टक में उल्लिखित विषयों को स्पष्ट करने के लिए छोटी पुस्तकें प्रकाशित की जायेंगी। सभी को मिलाकर एक सम्पूर्ण ग्रन्थ भी प्रकाशित करने का प्रयास किया जायेगा। कुछ विषयों जैसे इतिहास, वैदिक दर्शन, विश्व धर्म, विकासवाद आदि पर बड़े ग्रन्थ लिखने की भी आवश्यकता है। इसके अलावा वैदिक शब्द कोश भी प्रकाशित किया जाना है। विश्व धर्म के प्रमुख ग्रन्थों वेद आदि का भी

प्रकाशन विभिन्न आकार प्रकार के संस्करणों में होना चाहिए।

इस प्रकार साहित्य प्रकाशन का बहुत बड़ा कार्य हमारे सामने है। इतना कार्य एक व्यक्ति या किसी छोटी संस्था के वश की बात नहीं है। हमें अपनी क्षमता भर प्रयास करके उदाहरण प्रस्तुत करना है तथा अन्य समर्थ लोगों को प्रेरित करना है। प्रतिभा सम्पन्न लेखकों तथा सम्पादकों को भी इसके लिए आगे आना चाहिए। हम तो चाहते हैं कि लेखन, सम्पादन, प्रकाशन का गुरुतर दायित्व समर्थ संस्थान जैसे गीता प्रेस, गोरखपुर, शांतिकुंज हरिद्वार, आर्य समाज, गायत्री परिवार, संघ परिवार, रामकृष्ण मिशन, सर्वोदय आदि अपने हाथ में ले लें तो हम अपनी सीमित क्षमता के साथ उसके प्रचार-प्रसार का ही यथा संभव प्रयास करते रहें। परन्तु जब तक कोई अन्य यह दायित्व नहीं उठाता है, तब तक हम अपना प्रयास तो करते ही रहेंगे।

अब तक हम इस दिशा से मात्र दो पुस्तकें विकासवाद की रूपरेखा तथा अष्टांग योग परिचय ही प्रकाशित कर सके हैं। प्रस्तुत पुस्तक हमारा तीसरा प्रयास है। इनके अतिरिक्त हमने चार काव्य पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं जिनमें एक प्रबन्ध काव्य है। उनमें भी इन विचारों को काव्य शैली में व्यक्त करने का प्रयास किया गया है। अब प्रकाशन की गति बढ़ाने का प्रयास किया जायेगा। प्राचीनतम इतिहास धारावाहिक स्तम्भ के रूप में तथा सरल संस्कृत व्याकरण लेख के रूप में छपे हैं। उन्हें शीघ्र ही पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित किया जायेगा।

2. सत्संग :- दैनिक सत्संग नियमित रूप से होना चाहिए। वेद पाठ के साथ यथा सम्भव विश्वधर्म पाठ सभी परिजन करें। पंचामृत अष्टक के विषयों को एक एक कर प्रतिदिन चर्चा में लेना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक विषय चर्चा में आ जायेगा। साप्ताहिक सत्संग में विचार गोष्ठी तथा मासिक सत्संग में संगठन तथा कार्यक्रम आयोजन सम्बन्धी बैठक हो जायेगी। इससे सभी परिजन जाग्रत तथा सक्रिय रहेंगे तथा नये परजनों को भी उद्देश्यों तथा सिद्धान्तों की जानकारी मिलती रहेगी। निरन्तर सम्पर्क बने रहने से परिजनों में आत्मीयता रहेगी तथा संगठन जीवन्त तथा सक्रिय रहेगा। इससे ज्ञानवर्द्धन होता रहेगा

और प्रेरणा तो मिलेगी ही। नियमित रूप से सत्संग में आने पर व्यक्तित्व विकास भी होगा ही। सत्संग में योग चर्चा तथा अभ्यास भी करें तो अधिक लाभ होगा। युगाब्द नव सम्वत् तथा शरद पूर्णिमा पर बड़े सत्संग सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं। मासिक समीक्षा बैठक में पिछले प्रगति की समीक्षा कर और अच्छा करने की योजना बनायी जाए।

3. संस्कार :- सभी परिजनों के लिए संस्कार पंचामृत में वर्णित पाँच संस्कार कराना अनिवार्य माना जाना चाहिए। साहित्य, सत्संग, संस्कार ही प्राथमिक सदस्यता मानी जाए। यदि कोई व्यक्ति सदस्य बनना चाहे तो सबसे पहले उसे साहित्य पढ़ाया जाए। फिर उसके घर में वेद स्थापना तथा उसका वेदारम्भ संस्कार कराया जाए। उसी समय प्रेरणा देकर साहित्य लेने तथा पढ़ने के लिए उसे प्रेरित किया जाए। उसके बाद वह सत्संग में आने लगे तो उसे सदस्य की मान्यता प्रदान करें।

4. सद्ज्ञान शिविर :- पंचामृत अष्टक में वर्णित सभी विषयों का व्यावहारिक तथा क्रियात्मक ज्ञान होने के लिए सद्ज्ञान शिविर लगाये जाएँ। विशेष रूप से संस्कृति पंचामृत के पाँचों विषयों वेद, योग, संस्कृत, इतिहास तथा दर्शन के व्यावहारिक प्रशिक्षण के लिए शिविर बहुत उपयोगी तथा लोकप्रिय भी होंगे। शिविर के समापन पर प्रशिक्षित लोगों को सीखे हुए ज्ञान का प्रदर्शन करने का अवसर दिया जाए तथा श्रेष्ठ प्रदर्शन को पुरस्कृत भी करें। इससे उनका उत्साह बढ़ेगा तथा अन्य लोगों को प्रेरणा भी मिलेगी।

वेद शिविर के अन्त में वेद पाठ प्रतियोगिता, योग शिविर के अन्त में ध्यानात्मक आसन पद्मासन, सिद्धासन, सुखासन, वज्रासन के साथ प्राणायाम और ध्यान का प्रदर्शन, योग प्रश्नोत्तरी, योग व्याख्यान प्रतियोगिता, संस्कृत शिविर के अन्त में संस्कृत सम्भाषण तथा परिचर्चा, इतिहास शिविर के अन्त में इतिहास प्रश्नोत्तरी, ऋत दर्शन शिविर के अन्त में ऋत प्रश्नोत्तरी में ऋत व्याख्यान प्रतियोगिताएँ रखी जाएँ। ऋत प्रश्नोत्तरी में किसी घटना के मूल में ऋत होने की सम्भावना पर प्रश्न किये जा सकते हैं। अच्छा होगा कि प्रश्नोत्तरी में दो या अधिक दल बना दिये जाएँ। एक दल प्रश्न रखे तथा अन्य उसका

उत्तर दें। उत्तर सही न मिल सके तो प्रश्नकर्ता ही उचित उत्तर बताएँ। इस प्रकार अंकों की गणना कर श्रेष्ठताक्रम बनाया जा सकता है।

5. सेवा :- सामाजिक कार्यकर्ता के लिए सेवा भावना अनिवार्य है। विकास मंच परिवार के परिजन आपस में पूर्ण समर्पित सेवा भाव रखें तथा समाज के सभी दुःखी पीड़ित लोगों की सेवा सहायता यथाशक्ति करने का प्रयास करें।

सामाजिक कार्यों में सहयोग देना भी सेवा धर्म है। साहित्य प्रसार, सत्संग, संस्कार, सद्ज्ञान शिविर तथा पीड़ितों की सहायता में तन-मन-धन से सहयोग करना सराहनीय सेवा है। इसके लिए सभी परिजन प्रतिदिन एक घण्टा समय तथा एक घण्टे की आय इन श्रेष्ठ सेवा कार्यों में लगाने का संकल्प लें। सक्रिय तथा उत्तरदायित्वपूर्ण प्रमुख परिजनों के लिए यह अनिवार्य होना चाहिए। विशेष रूप से साहित्य प्रसार के लिए यह अंशदान बहुत आवश्यक है। प्राणवान तथा संकल्प के धनी परिजनों के लिए इतना सेवाधर्म निर्वाह करना कठिन भी नहीं है। इसके बदले परा चेतना की ओर से जो अनुदान मिलता है, उसकी तुलना में इतना मूल्य चुकाना बहुत कम प्रतीत होता है।

सत्संग

सद्विचारों की सामूहिक चर्चा ही सत्संग है। नियमित सत्संग करने से भटकाव की सम्भावना नहीं रहती है। अतः पाँच स्तरीय नियमित सत्संग की व्यवस्था की गयी है।

1. दैनिक :- हम एक दिन भी सत्संग से वंचित या विरत न रहें, इसलिए दैनिक सत्संग आवश्यक है। प्रतिदिन सत्संग में वेद पाठ तथा विश्व धर्म पाठ करना चाहिए। पाठ किये गये मन्त्रों के अर्थ भी पढ़ें तथा एक मन्त्र की व्याख्या की जाए। उसके बाद सामूहिक रूप से किसी ध्यानात्मक आसन में बैठकर प्राणायाम तथा ध्यान करें। वेद मन्त्र व्याख्या तथा योग साधना के लिए स्वयं योग्य बनें। दैनिक सत्संग के लिए आधा घण्टा से एक घण्टा तक समय निर्धारित किया जा सकता है।

2. साप्ताहिक :- रविवार या अन्य कोई दिन सुविधा के अनुसार साप्ताहिक सत्संग के लिए निश्चित कर लें। दैनिक सत्संग के बाद पंचामृत सप्तक में वर्णित किसी एक विषय पर सभी परिजन विचार व्यक्त करें। इससे सभी सदस्य हमारे सिद्धान्तों तथा उद्देश्यों को समझेंगे तथा अभिव्यक्ति और व्याख्यान की भी क्षमता प्राप्त करेंगे। इसमें एक से दो घण्टे का समय रख सकते हैं।

3. पाक्षिक :- प्रत्येक मास की अमावस्या तथा पूर्णिमा पर पाक्षिक सत्संग होता है। इसमें दैनिक सत्संग के बाद एक विद्वान का व्याख्यान हो तथा वक्ता से प्रश्नोत्तर किया जाए। व्याख्यान का विषय भी पंचामृत अष्टक से ही लिया जाएगा। प्रश्नोत्तर व्याख्यान के सन्दर्भ में ही किये जाएँ।

4. मासिक :- प्रत्येक पूर्णिमा पर दैनिक सत्संग के बाद आगामी मास की कार्य योजना बनाएँ। मत हैं तो मतभेद भी होंगे। संवाद बनाये रखें, विवाद न होने दें। कहने का धैर्य तथा सुनने का साहस रखें। अन्ततः सभी कार्यक्रम पंचामृत सप्तक के अनुसार ही होंगे। अतः सर्वसम्मति बनाना सरल होगा। नकारात्मक की अपेक्षा सकारात्मक चिन्तन विकसित करें। निषेध या प्रतिकार प्रतिरक्षा के विषयों का विरोध करने के स्थान पर सकारात्मक विषयों चिन्तन, संस्कृति, संस्कार पर अधिक ध्यान दें। जिन विषयों का निषेध किया गया है तथा प्रतिकार या बचाव के लिए कहा गया है, उन्हें अपने जीवन में न आने दें, स्वयं को आदर्श उदाहरण बनाकर प्रस्तुत करें, यही बहुत होगा।

5. वार्षिक :- नव सम्वत् पर मुख्य वार्षिक सत्संग का आयोजन किया जाता है। यह आयोजन एक सप्ताह का होना चाहिए। इसमें दैनिक सत्संग के बाद प्रभात फेरी निकालें तथा आयोजन स्थल पर पहुँचकर संस्कार प्रारम्भ कर दें। सभी इच्छुक लोगों के संस्कार सम्पन्न होने तक यह कार्यक्रम चलता रहेगा। मध्याह्न भोजन-विश्राम की व्यवस्था आयोजन स्थल पर ही करें।

अपराह्न सत्र में परिजन-सम्मेलन करें। उसमें प्रमुख वक्ता चिन्तन पंचामृत या ऋत पंचामृत के विषयों पर उद्बोधन करें। सायं कालीन सत्र में संस्कृति पंचामृत में प्रस्तुत विषयों पर विद्वानों के प्रवचन तथा प्रेरणाप्रद संगीत

का कार्यक्रम रखें। पूरे आयोजन में साहित्य बिक्री केन्द्र अवश्य खुला रहना चाहिए। बिक्री महत्वपूर्ण नहीं है, कम से कम लोगों को जानकारी तो मिलेगी ही।

शरद् पूर्णिमा के अवसर पर भी इसी प्रकार का आयोजन किया जाए। दोनों ही हमारे प्रेरणा दिवस हैं। अन्य प्रमुख ऐतिहासिक दिवसों राम नवमी, कृष्ण जन्माष्टमी, व्यास पूर्णिमा, बुद्ध पूर्णिमा, शंकराचार्य जयंती, ईसा जयन्ती, मोहम्मद जयन्ती, नानक जयन्ती, वैशाखी, आदि अवसरों पर भी इसी प्रकार के एक दिवसीय आयोजन किये जा सकते हैं।

हमारे सभी परिजनों के जन्म दिवस महत्वपूर्ण हैं। जन्मदिवस पाँच संस्कारों में भी सम्मिलित हैं। इसे परिजन के निवास पर ही करें तो अच्छा रहेगा। कभी सम्भव न हो सके तो दैनिक सत्संग में ही कर लें।

ॐ

9. वैदिक धर्म प्रवाह

समय-समय पर तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुसार वैदिक धर्म अनेक धाराओं में प्रवाहित होता रहा है। वैदिक इन्दुत्व या हिन्दुत्व की प्रमुख धाराएँ हैं 1. शुद्ध वैदिक, 2. कर्मकाण्ड, 3. अध्यात्म दर्शन, 4. पौराणिक पूजन-पाठ, 5. भक्ति।

1. शुद्ध वैदिक :- आदि पुरुष पितामह ब्रह्मा द्वारा वेद को परमात्मा से प्राप्त कर जन सामान्य के लिए सुलभ बनाने के समय वेद ही एकमात्र धर्म था। वेद मंत्रों की व्याख्या करने वाले ऋषि ही समाज के मार्ग दर्शक थे। वेद पाठ करना तथा वेद व्याख्यान ही धार्मिक कृत्य था। अन्य कोई ग्रन्थ या परम्परा, कर्मकाण्ड आदि था ही नहीं। अतः वेद पाठ तथा वेद व्याख्यान ही एकमात्र सनातन इन्दु या हिन्दु धर्म है। इसका पालन करने से ही सत्युग का गमन तथा स्वर्ग का अवतरण सम्भव है।

2. कर्मकाण्ड :- बाद में वेद व्याख्या के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना हुई। वेद ब्रह्म की व्याख्या करने वाले ग्रन्थों को ब्राह्मण ग्रन्थ कहते हैं। उनमें विभिन्न प्रकार के यज्ञीय आयोजनों का भी उल्लेख है। फिर गृह सूत्र, धर्मसूत्र, श्रौतसूत्र, शुल्वसूत्र तथा स्मृतियों की रचना हुई। इन सभी ग्रन्थों में अग्निहोत्र आदि कर्मकाण्ड, विभिन्न संस्कार तथा मानव जीवन के क्रियाकलाप तथा कर्तव्यों का निर्देश है। इनके प्रचलन के समय वेद पाठ तथा व्याख्यान के साथ लोकरुचि जाग्रत करने के लिए भव्य आयोजन होने लगे तथा सरल वैदिक धर्म में धन का महत्व बढ़ने लगा। आर्य समाज तथा गायत्री परिवार इसी धारा के आधुनिक प्रतिनिधि माने जा सकते हैं।

3. अध्यात्म दर्शन :- खर्चीले आडम्बर युक्त अग्निहोत्र परक यज्ञीय आयोजनों से ऊबकर लोग अध्यात्म की ओर लौटने लगे। इस दौरान वेद, आरण्यक, ब्राह्मण आदि ग्रन्थों के स्पष्ट आध्यात्मिक दार्शनिक अंशों को चुनकर उपनिषद नाम दिया गया। उपनिषद 11 हैं, 1. ईश, 2. केन, 3. कंठ, 4.

मुण्डक, 5. माण्डूक्य, 6. प्रश्न, 7. एतरेय, 8. तैत्तिरीय, 9. श्वेताश्वतर, 10. वृहदारण्यक, 11. छान्दोग्य। ईश उपनिषद् यजुर्वेद का अन्तिम चालीसवाँ अध्याय है। इसे ईशावास्योपनिषद् भी कहते हैं। शेष सभी उपनिषदें ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थों के भाग हैं। छह दर्शन तथा गीता भी इसी श्रेणी के दार्शनिक ग्रन्थ हैं। गीता महाभारत का भाग है। वेद को मूल धर्म मानते हुए वेद पाठ, व्याख्यान, अर्थचिन्तन के साथ आत्मा, परमात्मा, प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए चिन्तन करना अध्यात्म-दर्शन धारा है।

वैसे बाद में उपनिषद् के नाम से अनेक छोटी पुस्तकों की रचना उत्तर मध्यकाल तक होती रही है। उनकी संख्या ढाई सौ तक पहुँच चुकी है जिसमें अल्लोपनिषद भी शामिल है। परन्तु वास्तविक प्राचीन तथा मूल उपनिषद 11 ही हैं। उपनिषद, दर्शन तथा गीता को प्रस्थानत्रयी कहते हैं।

4. पौराणिक (कथा, पूजन-पाठ) :- ऐतिहासिक तथा काल्पनिक प्रेरणाप्रद कथाओं के माध्यम से लोगों को वैदिक धर्म की मुख्य बातों को समझाने का प्रयास पौराणिक धारा है। महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण तथा कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास कृत महाभारत के प्रसंगों को सरस ढंग से प्रस्तुत कर जनता में धर्म के प्रति जागरूकता बनाये रखने का प्रयास किया गया है। वेद पाठ तथा व्याख्यान के साथ सरस कथाओं को जोड़ने से जन सामान्य की रुचि भी बढ़ने लगी। बाद में रामायण तथा महाभारत को आधार बनाकर इतिहास तथा लोक परम्पराओं का संकलन कर वर्तमान पुराणों का रूप दिया गया। इससे इतिहास की रक्षा तथा प्रचार हुआ।

धीरे-धीरे प्राचीन महापुरुषों मत्स्य, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण तथा बुद्ध आदि को अवतार माना जाने लगा। तीन प्रमुख देवता ब्रह्मा, विष्णु, शिव माने गये। फिर शिव की पत्नी पार्वती को शक्ति तथा उनके पुत्र गणेश को प्रथम पूज्य देवता माना गया। पहले विष्णु के दस तथा बाद में 24 अवतार माने गये। शिव तथा शक्ति के भी अवतार माने जाने लगे।

अवतारों का मुख्य उद्देश्य वेद तथा वैदिक धर्म की रक्षा करना ही माना जाता है। अतः अवतारों की कथाएँ वैदिक धर्म को लोकप्रिय बनाने का ही प्रयास

है। जैन मत में चौबीस तीर्थंकर तथा बौद्धों में 24 बुद्ध भी माने जाते हैं।

5. भक्ति :- मध्यकाल के अन्धकार युग में शिक्षा के अभाव तथा राजनीतिक संकट के कारण सन्तों ने जनता को ईश्वर के प्रति समर्पण का मार्ग दिखाया। उन्होंने कहा कि निराकार, साकार, मूर्ति या ज्योति किसी भी रूप में ईश्वर को अनुभव करो तथा उसके प्रति स्वयं को समर्पित कर दो। तुलसीदास जैसे विद्वान भक्तों ने धर्म का आधार वेद को ही माना है तथा वेद मार्ग को छोड़ना कुपन्थ बताया है - चलहिं कुपन्थ वेद मग छांड़े। कपट कलेवर कलिमल भांड़े। वे अपनी बात का समर्थन वेद से ही चाहते हैं - इति वेद वदन्ति न दन्त कथा।

इस समय शुद्ध वैदिक धर्म को अपनाना सर्वश्रेष्ठ है। जो व्यक्ति जिस मार्ग को मानता है, उसमें वेद पाठ तथा व्याख्यान को मूल आधार के रूप में सम्मिलित कर ले तो भ्रम से बचने तथा वैदिक इन्दु या इन्दु धर्म की एकता का उद्देश्य पूरा हो जाएगा। किसी धार्मिक प्रतीक मूर्ति आदि या कर्मकाण्ड का विरोध न करके सभी प्रतीकों तथा धार्मिक कार्यक्रमों के साथ वेद स्थापना तथा पाठ को सम्मिलित करना अधिक उपयोगी तथा विवेकपूर्ण है। वेद को ही धार्मिक श्रद्धा का प्रतीक मानना सबसे श्रेष्ठ है।

ॐ

10. वैदिक संस्कृति : सार संक्षेप

1. ओ3म् :- परमात्मा का मूल नाम ओ3म् है।

2. वेद :- संसार का प्राचीनतम साहित्य वेद है। यह सनातन हिन्दु धर्म संस्कृति का मूल-आधार है। वेद मन्त्रों का संग्रह है जिसे संहिता कहते हैं। वेद सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान का स्रोत है। वेद की प्रत्येक बात तर्क-प्रमाण के अनुकूल है। वेद सभी परिस्थितियों में मार्ग दर्शन करने में समर्थ है। वेद मन्त्रों के समुचित प्रयोग से स्वास्थ्य तथा पारिवारिक-सामाजिक आदि सभी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। यह ब्रह्म से प्राप्त दिव्य ज्ञान है, अतः वेद को वेद ब्रह्म तथा वेद भगवान भी कहते हैं।

3. हिन्दु :- वैदिक इन्दु से हिन्दु शब्द बना है जिसका अर्थ है ब्रह्म ज्ञान वेद के प्रकाश तथा आध्यात्मिक ऐश्वर्य से युक्त और उसका प्रसार करने वाला।

4. संस्कृत :- वेद की भाषा वैदिक संस्कृत संसार की प्राचीनतम भाषा है। यह पूर्ण वैज्ञानिक भाषा है तथा वैदिक विधि से बहुत सरलता से एक मास में सीखी जा सकती है।

5. इतिहास :- वैदिक इतिहास आदि पुरुष ब्रह्मा तथा वेद के प्राप्त होने से प्रारम्भ होता है। जल प्रलय के बाद वैवस्वत मनु से क्रमबद्ध इतिहास मिलता है। प्राचीन इतिहास चार युगों सत्युग, त्रेता, द्वापर, कलियुग में विभाजित है। महाभारत युद्ध के बाद युगाब्द सम्वत् प्रारम्भ होता है। उसके बाद के इतिहास में तिथिक्रम स्पष्ट मिलता है। सूर्यवंश या मनु वंश में ही सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) का जन्म युगाब्द 1215 तथा निर्वाण युगाब्द 1295 में हुआ। शंकराचार्य का जन्म युगाब्द 2593 तथा निर्वाण युगाब्द 2625 में हुआ। विक्रमादित्य का जन्म युगाब्द 3000 में तथा राज्याभिषेक युगाब्द 3045 में हुआ। उसी समय विक्रम संवत् भी प्रारम्भ हुआ। वैदिक इतिहास के मुख्य स्रोत 1. वाल्मीकि रामायण, 2. वेद व्यास कृत महाभारत, 3. कालिदास कृत रघुवंश, 4. कल्हण कृत राजतरंगिणी, 5.

पुराण हैं। पुराण के पांच अंग हैं - 1. सर्ग (सृष्टि), 2. प्रति सर्ग (प्रलय), 3. मन्वन्तर (काल विभाजन), 4. वंश, 5. वंशानुचरित हैं।

6. यज्ञ :- सामूहिक वैदिक सत्संग को यज्ञ कहते हैं। यज्ञ शब्द के तीन अर्थ हैं - 1. देव पूजा अर्थात् परमात्मा, वेद तथा विद्वानों का सम्मान तथा सहयोग, 2. संगतिकरण, संगठन सम्मेलन, 3. दान। कुछ लोग यज्ञ-सत्संग में अग्निहोत्र-हवन भी करते हैं परन्तु यह आवश्यक नहीं है। मुख्य कार्य है वेद पाठ तथा वेद व्याख्यान।

7. ऋत :- सृष्टि के व्यापक नियमों को ऋत कहते हैं। ऋत का उल्लंघन सम्भव नहीं है। यही सिद्धान्त विज्ञान, दर्शन तथा अध्यात्म का आधार है।

8. योग :- योग आत्मा और परमात्मा को जोड़ने की साधना है। यह दर्शन भी है और विज्ञान भी। योग के पांच अंग - 1. साधन, 2. शिव, 3. आत्म, 4. राज, 5. हठ योग हैं। साधन योग में 1. ज्ञान, 2. कर्म, 3. उपासना, 4. विज्ञान, 5. भक्ति सम्मिलित हैं।

9. वेद पाठ :- वेद मंत्र तथा उनके अर्थ की शुद्धता बनाये रखने के लिए अनेक पाठ विधियों का प्रचलन हुआ। 1. संहिता पाठ (मन्त्र का मूलरूप), 2. पद पाठ (पदच्छेद), 3. क्रम पाठ (पदों का क्रम दोहराना), 4. चर्चा पाठ (एक-एक पद छोड़कर पढ़ना, दो लोगों द्वारा मिलकर मन्त्र का पाठ पूरा करना), 5. विकृति पाठ (कई प्रकार से मन्त्रों के पदों (शब्दों) का क्रम बदलकर पाठ करना)। विकृति पाठ की दस विधियाँ हैं - 1. जटा, 2. माला, 3. शिखा, 4. रेखा, 5. ध्वज, 6. दण्ड, 7. रथ, 8. धन, 9. व्युत्क्रम, 10. अन्वय।

10. युग :- युगाब्द पूर्व का इतिहास तीन युगों का सत्युग, त्रेता, द्वापर में विभाजित है। इस अवधि में सूर्यवंश में 96 राजा हुए। एक-एक युग में सामान्यतः 32 राजाओं ने शासन किया। युगाब्द के बाद 1200 वर्षों में गौतम बुद्ध तक मगध में 32 राजा हुए। इस प्रकार तीनों युगों में 96 राजाओं का शासनकाल लगभग 3600 वर्ष होना चाहिए। सामान्यतः एक युग 1200 वर्षों का माना जाता है। बुद्धावतार से कलियुग तथा चतुर्युगी पूर्ण हो गयी। ज्ञान की

वर्तमान स्थिति में यही गणना उपयुक्त प्रतीत होती है।

11. देव वर्ष :- एक देव वर्ष में 360 मानव वर्ष होते हैं। खगोलीय गणना में इसका प्रयोग होता है। खगोल या ज्योतिष में एक युग में 1200 × 360 = 432000 मानव वर्ष होते हैं। द्वापर दो गुना, त्रेता तीन गुना, सत्युग चार गुना मानने पर चार युगों का समय 43 लाख 20 हजार वर्ष होता है। इसे मानव इतिहास पर लागू कर देने से वैवस्वत मनु का समय महाभारत या युगाब्द से 38 लाख 68 हजार वर्ष पूर्व मानना पड़ेगा। इसे तर्क संगत बताने के लिए हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है।

12. वेदांग :- जिन विद्याओं से वेद का अर्थ समझने में सहायता मिलती है, उन्हें वेदांग कहते हैं। इनमें शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, निघण्टु सम्मिलित हैं। कल्प तथा ज्योतिष को भी वेदांग माना जाता रहा है किन्तु वे स्वतन्त्र विषय हैं तथा उपवेद के अन्तर्गत आते हैं।

13. उपांग :- वेद के दार्शनिक पक्ष की व्याख्या करने वाले षट्दर्शन वेद के उपांग कहे जाते हैं। उनके नाम - 1. सांख्य (कपिल), 2. न्याय (गौतम), 3. वैशेषिक (कणाद), 4. योग (पतंजलि), 5. मीमांसा (जैमिनी), 6. वेदान्त (वादरायण वेद व्यास) हैं। उपनिषद, गीता तथा बौद्ध, जैन, चार्वाक दर्शन भी इसी वर्ग में आते हैं। इन सभी दर्शनों का आधार ऋत ही है।

14. उपवेद :- वेद के आधार पर विकसित विभिन्न विद्याओं को उपवेद कहते हैं। आयुर्वेद (चिकित्सा), धनुर्वेद (सैन्यविज्ञान), अर्थवेद (आर्थिक समारोह, राजनीतिक प्रबन्ध), स्थापत्य वेद (भवन निर्माण), वास्तुवेद (गृह तथा नगर नियोजन), यन्त्रवेद (प्रौद्योगिकी, तकनीक, अभियन्त्रण), ज्योतिर्वेद या ज्योतिष (खगोल), गन्धर्व वेद (ललित कला) आदि उपवेद के अन्तर्गत आते हैं।

15. ब्राह्मण ग्रन्थ :- वेद की व्याख्या तथा कर्मकाण्ड ब्राह्मण ग्रन्थों के विषय हैं। शतपथ, गौपथ, साम, मन्त्र, दैवत, ताण्ड्य आदि प्रमुख ब्राह्मण ग्रन्थ हैं।

17. उपनिषद् :- वेद, ब्राह्मण, आरण्यक ग्रन्थों के अध्यात्म विद्या वाले भाग ही उपनिषद हैं। 11 उपनिषदें - 1. ईश, 2. केन, 3. कठ, 4. प्रश्न, 5.

मुण्डक, 6. माण्डूक्य, 7. एतरेय, 8. तैत्तिरीय, 9. श्वेताश्वर, 10. छान्दोग्य, 11. वृहदारण्यक हैं। इस समय सैंकड़ों पुस्तकों के नाम से उपनिषद शब्द जुड़ा है जैसे अल्लोपनिषद आदि। किन्तु वे वेद, ब्राह्मण, आरण्यक ग्रन्थों के भाग नहीं हैं, अतः इसके अन्तर्गत नहीं आते हैं।

18. स्मृति :- इन ग्रन्थों को कानून और संविधान माना जाता है। भारत के प्रथम शासक मनु के नाम पर भृगु तथा नारद ने जो संविधान लिखे, उन्हें मनु स्मृति कहते हैं। इस प्रकार मनु स्मृति भी दो हैं जिनमें कोई भी मनु द्वारा लिखित तथा मनु के समय की नहीं हैं। पाराशर, याज्ञवल्क्य, विश्वामित्र, भरद्वाज, यम, अरुण, बुध, पुलस्त्य आदि के नामों से साठ स्मृतियाँ इस समय उपलब्ध हैं।

19. कल्पसूत्र :- विभिन्न कर्मकाण्डों का विधान कल्पसूत्रों में है। इनकी संख्या सैंकड़ों में है जिन्हें पाँच वर्गों में बाँटा गया है। 1. श्रौत सूत्र, 2. गृह सूत्र, 3. शुल्व सूत्र, 4. धर्म सूत्र, 5. अन्य कल्प सूत्र ग्रन्थ जो लुप्त हैं।

20. अन्य ग्रन्थ :- अपने समय की आवश्यकता के अनुसार विद्वानों ने समय-समय पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। प्रचार के कारण वे लोकप्रिय भी होते रहे हैं। उन सबका उद्देश्य वैदिक धर्म की रक्षा तथा प्रचार ही है। सभी ग्रन्थों में वेद के अनुकूल बातें ग्रहण करने योग्य तथा वेद के प्रतिकूल सभी बातें त्यागने योग्य हैं।

21. संस्कृति :- इसका स्वरूप स्थायी होता है। इसके मुख्य तत्व प्रेरणा ग्रन्थ, भाषा, दर्शन, आचरण तथा इतिहास हैं। संस्कृति ज्ञान, चिन्तन तथा आचरण का विषय है। यह प्रत्येक देश, काल परिस्थिति में समान होती है।

22. सभ्यता :- यह परिवर्तनशील होती है। इसमें भोजन, वस्त्र, आवास, परिवहन, संचार तथा अन्य उपयोगी उपकरण सम्मिलित होते हैं। भौगोलिक परिस्थिति, वातावरण, नये उपकरणों तथा कला का विकास आदि के कारण सभ्यता के स्वरूप तथा साधनों में परिवर्तन होता रहता है। पर्वतीय प्रदेश तथा मरुस्थल की सभ्यता एक नहीं हो सकती है, बैलगाड़ी तथा जेट विमान युग की सभ्यता भी एक समान नहीं रह सकती। उसमें परिवर्तन होता

ही रहता है और होना भी चाहिए। सभ्यता का सम्बन्ध जीवन स्तर से है जिसे बढ़ना ही चाहिए।

अतः परम्परा के नाम पर बैलगाड़ी युग को ढोते रहना और आधुनिक वाहन, भवन, संचार के साधनों तथा वस्त्रों और भोजन तैयार करने के साधनों का प्रयोग न करना उचित नहीं है। आधुनिक वस्त्र, भोजन तथा उपकरण अपनाने चाहिए, यह सभ्यता का विकास है। भाषा, साहित्य तथा इतिहास का मूल रूप सदैव बनाये रखना चाहिए, यही धर्म-संस्कृति है।

23. धर्म :- धर्म का अर्थ है मूल स्वभाव तथा कर्तव्य। धर्म शब्द का अर्थ है धारण करना। जो कुछ अनिवार्य रूप से धारण किया जाए तथा छोड़ा न जा सके, वही धर्म है। सूर्य का धर्म प्रकाश तथा उष्णता है। इसे वह कभी छोड़ नहीं सकता है। इसे छोड़ देगा तो वह सूर्य नहीं रह जाएगा। हमारा धर्म वेद है। वेद को छोड़कर हम वैदिक इन्दु या हिन्दु नहीं हो पायेंगे।

24. सम्प्रदाय :- किसी गुरु के मार्गदर्शन में कार्य करने वालों का समुदाय या समूह सम्प्रदाय होता है। कार्य प्रणाली तथा प्रस्तुत करने का तरीका गुरु का अपना होता है तथा उसका मूल आधार वेद ही होता है। वेद को मूल आधार न मानने वाला वर्ग इन्दुत्व या हिन्दुत्व से अलग हो जाता है। गौतम बुद्ध, गुरुनानक तथा गुरु गोविन्द सिंह ने वैदिक धर्म की रक्षा तथा उसमें आ गयी बुराइयों को दूर करने के लिए ही संगठन बनाये थे। यदि गुरुओं की वास्तविक इच्छा को मानते हुए वेद को प्राचीनतम स्रोत के रूप में स्वीकार कर लें तो वे भी हिन्दु ही हैं।

25. सामाजिक नैतिकता :- किसी समाज में प्रचलित परम्पराएँ ही सामाजिक नैतिक हैं। गलत रूढ़ियाँ, अन्धविश्वास तथा अनुचित परम्पराओं को बदलना भी पड़ता है। वेद के अनुकूल होने पर उनका पालन करना चाहिए तथा प्रतिकूल होने पर छोड़ देना चाहिए। यही सनातन वैदिक इन्दु या हिन्दु धर्म है।

26. सत्संग तथा संस्कार :- वेद विश्व का प्राचीनतम साहित्य तथा सनातन धर्म संस्कृति का मूल आधार है। प्रत्येक घर में वेद स्थापना तथा नियमित पाठ एवम् उसका स्वाध्याय करना हमारा अनिवार्य कर्तव्य है। प्रत्येक

घर, मन्दिर, कार्यालय, प्रतिष्ठान में सत्संग के साथ वेद स्थापना संस्कार सम्पन्न कराना चाहिये। सभी धार्मिक कार्य केवल वेद मन्त्रों द्वारा सम्पन्न कराना चाहिये। नियमित पारिवारिक वैदिक सत्संग, वैदिक संगोष्ठी तथा प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन, वेद स्थापना तथा सभी कार्यक्रमों का प्रारम्भ तथा समापन वेद पाठ से ही करना चाहिये।

संस्कृति को व्यावहारिक बनाने, जीवन में उतारने तथा स्थायी रूप देने के लिए संस्कार प्रणाली को अपनाया गया है। प्राचीन ग्रन्थों में चालीस संस्कारों का उल्लेख है। बाद में सोलह संस्कारों को प्रमुखता दी गयी। श्रीराम शर्मा आचार्य ने बारह संस्कारों को महत्व प्रदान किया है। वर्तमान समय की आवश्यकता के अनुरूप हमने पाँच संस्कारों वेद स्थापना, नामकरण, जन्म दिवस, वेदारम्भ तथा समापवर्तन को अधिक महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य माना है।

सभी संस्कार किसी भी आयु में हो सकते हैं। संस्कार कराने वाले आचार्य को वेद का विद्वान् तथा लोभ रहित लोकसेवी होना चाहिए। ऐसे जीवन दानी विद्वान् को बुलाकर उनसे वेद पाठ तथा वेद मन्त्रों की व्याख्या करायी जानी चाहिए। उसको वेद संहिता का दान किया जाना चाहिए। यदि वह किसी से धन लेकर भी दान में मिले वेद ग्रन्थ को देता है तो भी वह वेद प्रचार ही करता है। यह भी सराहनीय होगा। उसको भोजन-वस्त्र तथा धन भी दिया जाना चाहिए। प्रत्येक संस्कार में वेद स्थापना, वेद पाठ, वेद मन्त्र व्याख्या तथा प्रसाद के रूप में वेद सूक्त वितरण अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए।

1. वेद स्थापना :- नये घर में प्रवेश के समय सबसे पहले वेद स्थापना संस्कार होना चाहिए। उस समय वेद सूक्तों का पाठ तथा मन्त्रों की व्याख्या होनी चाहिए। सम्भव हो सम्पूर्ण वेद पाठ भी करें। घर में देवस्थान बनाकर वेद की स्थापना कर दें। आमन्त्रित परिजनों को प्रसाद के रूप में वेद सूक्त वितरित करें।

2. नामकरण :- नवजात शिशु के जन्मोत्सव के अवसर पर नामकरण संस्कार किया जाना चाहिए। शिशु का नाम सार्थक तथा यथासम्भव वैदिक शब्दों में ही रखना चाहिए। वेद स्थापना तथा वेद पाठ के बाद पुरोहित शिशु

के माता पिता की सम्मति से उसके नाम की घोषणा तथा उस नाम के अर्थ की व्याख्या करे। जन्मोत्सव के समय नामकरण संस्कार नहीं हो सका हो तो बाद में सुविधानुसार कभी भी या जन्म दिवस के समय कर दें।

3. जन्म दिवस :- समाज में जन्म दिवस समारोह का व्यापक प्रचलन है। युगाब्द सम्वत् तथा भारतीय काल पञ्चांग के अनुसार जन्म तिथि पर जन्म दिवस संस्कार होना चाहिए। वेद स्थापना-वेद पाठ के पश्चात् वेद मन्त्रों से शुभ कामना देते हुए अभिनन्दन करें। प्रसाद के रूप में वेद सूक्त वितरण किया जाए। संस्कार के समय बुराई छोड़ने तथा सद्गुण विकसित करने का संकल्प लें। जन्म दिवस संस्कार व्यक्ति को सुसंस्कृत और महान् बना सकता है।

4. वेदारम्भ :- किशोरावस्था में प्रवेश से पूर्व वेदारम्भ संस्कार कर दिया जाना चाहिए। यदि उस समय न हो सका हो तो किसी भी आयु में और किसी भी दिन किया जा सकता है। वेदारम्भ संस्कार के दिन प्रारम्भ कर चारों संहिताओं का पाठ पूर्ण होने तक प्रतिदिन नियमित रूप से वेद पाठ करें। आचार्य वेद स्थापना तथा वेद पाठ के पश्चात् ऋग्वेद संहिता के प्रथम सूक्त का पाठ कराये तथा वेद पाठ करने तथा अर्थ व व्याख्या के विषय में उपदेश दे। सभी लोग मन्त्रों से सफलतापूर्वक वेद पाठ पूर्ण करने के लिए शुभकामनाएँ दें। अन्त में प्रसाद के रूप में वेद सूक्त वितरण किया जाए।

5. समापवर्तन :- वेदारम्भ संस्कार से प्रारम्भ हुआ वेद पाठ पूर्ण होने पर समापवर्तन संस्कार करना चाहिए। इसमें वेद स्थापना तथा वेद पाठ स्वयम् संस्कार कराने वाला ही करे। वह अपने प्रिय वेद सूक्तों का पाठ तथा व्याख्या करे। आचार्य के साथ सभी लोग स्वस्ति वाचन कर शुभकामनाएँ दें। अन्त में प्रसाद के रूप में वेद सूक्त का वितरण किया जाए।

ॐ

11. ॐ स्तुति

(यजुर्वेद अध्याय 40)

सूक्त - 1

ईशा वास्यम् इदम् सर्वम्,
यत् किञ्च जगत्याम् जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा,
मा गृधः कस्य स्वित् धनम्॥01॥

मन्त्रार्थ–इदम् यह, **सर्वम्** सब, **यत्** जो, **किञ्च** कुछ भी, **जगत्याम्** जगत् में **जगत्** गतिशील (है), **ईशा** ईश्वर द्वारा, **वास्यम्** वास किया हुआ अर्थात् व्याप्त (है)। **तेन** उससे **त्यक्तेन** त्यागपूर्वक **भुञ्जीथा** भोग करो, **कस्यस्वित्** किसी के, **धनम्** धन की **मा** मत, **गृधः** इच्छा करो।

भावार्थ :- सब कुछ ईश्वरमय है। सम्पूर्ण सृष्टि परमात्मा का आवास है, परमात्मा से वासित, निवासित, सुवासित है। इस प्रकार हम सदैव परमात्मा के सान्निध्य में हैं, उसके संरक्षण में हैं। जीवन निर्वाह के लिए भोग का पूर्णतः निषेध नहीं हो सकता है। अतः त्याग की भावना के साथ भोग करें, अर्थात् जीवन-निर्वाह के लिए साधन का उपयोग अवश्य करें, परन्तु किसी के धन को पा लेने की इच्छा करना उचित नहीं है, लोभ तो कदापि नहीं करें। धन का शाब्दिक अर्थ है उत्पन्न करना। अतः किसी के धन की इच्छा न करने का अर्थ है कि किसी अन्य के उत्पादन को न लेकर स्वयम् उत्पादन करें। अपने द्वारा उत्पादित संसाधनों से ही जीवन निर्वाह करना उचित है। अन्य का उत्पादन उपभोग करना अनैतिक और अकर्मण्यता भी है। यह हमारी अक्षमता का भी प्रतीक है। सामाजिक जीवन परस्पर सहयोग से ही चलता है। हवन अर्थात् आदान-प्रदान करना आवश्यक है। अनुचित साधनों से किसी के उत्पादन

अथवा धन को लेना तथा उसका उपभोग करना अनुचित है।

पदार्थ :- ईशा = ईश्वर द्वारा {ईश = ऐश्वर्य-अधिकार होना}। वास्यम् = वासयोग्य, वासमय, वास किया हुआ (वस् = रहना, निवास करना)। इदम् = यह, इसको। सर्वम् = सब। यत् = जो। किञ्च = कुछ। जगत्याम् = जगत् में, संसार में (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। जगत् = गतिशील {जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना}। तेन = उसके द्वारा। त्यक्तेन = त्याग से (त्यज- छोड़ना, त्यागना, देना, दान करना।)। भुञ्जीथा = भक्षण करो, भोग करो (भुज - संरक्षण करना, पालन करना, खाना, भक्षण करना)। मा= मत। गृधः = इच्छा करो (गृध - चाहना)। कस्यस्वित् = किसी के। धनम् = धन को (धन- उत्पन्न करना, फलना, बौर लगना)।। 01।।

कुर्वन् एव इह कर्माणि,
जिजीविषेत् शतम् समाः।
एवम् त्वयि न अन्यथा अतो अस्ति,
न कर्म लिप्यते नरे।।02।।।

मन्त्रार्थ- इह यहां, **कर्माणि** कर्मो को, **कुर्वन्** करता हुआ, **एव** ही, **शतम्** सौ, **समाः** वर्ष, **जिजीविषेत्** जीने की इच्छा करें, **एवम्** इस तरह, **त्वयि** तुम में, **अन्यथा** अन्य प्रकार से **न** नहीं **अस्ति** है, **अतो** इससे, **नरे** नर में **कर्म** कर्म, **न** नहीं, **लिप्यते** लिप्त होता है।

भावार्थ :- दीर्घ आयु की कामना करना स्वाभाविक है, परन्तु जीवन कर्म करते हुए ही सार्थक है, निष्क्रिय जीवन व्यर्थ है। ईश्वर को सर्वव्यापी मानकर कर्म करते रहें तो कर्म हमारे जीवन में, चेतना में लिप्त नहीं होता है, इसका भाव है कि हम कर्म के फल के प्रभाव से मुक्त रहते हैं।

विशेष :- समाः का अर्थ वर्ष माना गया है। सम को सर्वनाम मानने पर इसका अर्थ सब होता है। सम् धातु का अर्थ समान विभाग करना, समान होना, घबराने-हिचकिचाने से रोकना होता है। जीवन-काल को समान विभागों में बाँटा गया और उसे सम कहा गया तो उचित ही है। इसी को शरद् या वर्ष भी कहा गया है।

पदार्थ :- कुर्वन् = करता हुआ (कृ = करना)। एव = ही। इह = इसमें, यहां। कर्माणि = कर्मो को (कृ = करना)। जिजीविषेत् = जीवन की इच्छा करें {जीव् = प्राण धारण करना, जीवन धारण करना}। शतम् = सौ। समाः = वर्ष (सम - सब, सम् - समान विभाग करना, समान होना, घबराने-हिचकिचाने से रोकना। एवम् = इस प्रकार, इस तरह। त्वयि = तुम में। न = नहीं। अन्यथा = अन्य प्रकार से। अतो = इससे। अस्ति = है (अस् - होना)। न = नहीं। कर्म = कर्म या कार्य (कृ = करना)। लिप्यते = लिप्त होता है (लिप् - लेपन करना, बढ़ाना, अधिक करना)। नरे = नर में (नृ = ले जाना)।। 02।।

असुर्या नाम ते लोका,
अन्धेन तमसावृताः।
तान् ते प्रेत्य अपि गच्छन्ति,
ये के च आत्महनो जनाः।।03।।।

मन्त्रार्थ :- असुर्या ऐश्वर्य, उत्पन्न करने से हीन, रोगी **नाम** नाम वाले **ते** वे **लोका** लोक, दृश्य जगत् **अन्धेन** अन्ध **तमसावृताः** तमस् से आवृत हैं। **च** और **ये** जो **के** कौन **आत्महनो** आत्महनन करने वाले **जनाः** लोग (हैं), **ते** वे **प्रेत्य** भागकर **अपि** भी **तान्** उन (लोकों) को **गच्छन्ति** जाते हैं।। 03।।

भावार्थ :- असुर्या का अर्थ है ऐश्वर्य से हीन तथा उत्पन्न न करने वाला। यहाँ पर भौतिक संसाधनों को ऐश्वर्य नहीं माना गया है। कुछ उत्पन्न करना, सृजन करना जिनके लिए सम्भव नहीं है, वे असुर्य हैं, रोगी हैं। रोगी होने का अर्थ केवल शारीरिक रोग ही नहीं है। वे शारीरिक रूप से बलवान् भी हो सकते हैं, फिर भी वे रोगी हैं। भावनात्मक रूप से, वैचारिक रूप से, तथा आध्यात्मिक रूप से वे रोगी होते हैं। वे इन रोगों से ग्रस्त होकर स्वयम् भी अशान्त रहते हैं तथा सम्पर्क में आने वाले लोगों को भी तनावग्रस्त कर देते हैं। जो आत्म तत्व का हनन करने वाले अर्थात् अपना ही हनन करने वाले हैं, ऐसे लोगों के लिए तो संसार असुर्या ही है। इस स्थिति से बचने के लिए वे कितना भी भागें, कितने भी उपाय करें, उनको रहना इसी स्थिति में है। हम भागकर भौतिक स्थितियाँ तो बदल सकते हैं परन्तु यदि मानसिक और भावनात्मक स्थिति नहीं बदलती

है तो भौतिक परिस्थितियों में परिवर्तन होने पर भी वास्तविक शान्ति तो नहीं ही मिल सकती है।। 03।।

विशेष :- आत्महनो का अर्थ है आत्मा का हनन करने वाले। आत्मा का हनन तो सम्भव नहीं है। वह तो नित्य अविनाशी तत्व है। परन्तु लोक में आत्महनन या आत्महत्या शब्द बहुप्रचलित है। विद्वानों का मानना है कि यहाँ आत्महनन शब्द इसी लौकिक अर्थ में आया है। इसका आशय है आत्मा को नकारना, अस्वीकार करना। अविनाशी आत्मा को न जानना, उसको अनुभव न करना ही व्यावहारिक रूप से उसका हनन करना है। आत्मा अर्थात् सर्वव्यापी चिरन्तन सदा-सर्वदा विद्यमान रहने वाले चेतन तत्व को न जानकर जड़ शरीर तथा संसार को ही परम सत्य मानना ही आत्म हनन करना है। वेद में आत्मा तथा परमात्मा का अभेद है। परमात्मा के अर्थ में आत्मा शब्द का ही प्रयोग किया गया है। परमात्मा सर्वव्यापी है, उसका जितना अंश जीव के शरीर में व्याप्त होकर उसे चेतन रखता है, वही लौकिक अर्थ में आत्मा कहा जाता है। तत्वतः वह सर्वव्यापी आत्मा या लौकिक दृष्टि से परमात्मा से अभिन्न है। आत्मा को आत् या अत् धातु से निष्पन्न माना जाता है। आत् धातु का अर्थ होना, चिरन्तन होना, नित्य होना है, तथा अत् धातु का अर्थ सतत गमन करना, निरन्तर चलना है। गति अर्थ वाली धातुओं में ज्ञान, गमन, प्राप्ति अर्थ समाहित होते हैं। अतः आत्मा का अर्थ सर्वत्र प्राप्त तथा सर्वज्ञ भी होता है।। 03।।

पदार्थ :- असुर्य्या = ऐश्वर्य से हीन {अ - नहीं, सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न होना, असु-असू - रोगी होना, अस् = फेंकना, बिखेरना, उड़ाना, असु = प्राण }। नाम = नाम वाला। ते = वे, तुम्हारा, तुम्हारे लिए। लोका = दृश्य जगत् {लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना}। अन्धेन = अन्ध द्वारा (अन्ध - अन्धा होना, दिखाई न देना, आँखें मूंदना)। तमसा = इच्छा से (तम - इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना, अन्धकार होना)। वृताः = आवरण, ढका हुआ, वर्ताव, वाणी है (वृत - वर्तन करना, वर्ताव करना, रहना, होना, हिंसा करना, चमकना, बोलना, वरण करना, आवरण करना)। तान् = उनको। ते = वे, तुम्हारा, तुम्हारे लिए। प्रेत्य = प्रकृष्ट गमन कर, (प्र

- प्रकृष्ट, इ - जाना)। अपि = भी। गच्छन्ति = जाते है (गम्-गच्छ् = जाना)। ये = जो। के = कौन। च = और। आत्महनो = आत्मा का हनन करने वाले (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, अत् = सतत गमन करना, निरन्तर चलना, हन् - मारना, हिंसा करना)। जनाः = लोग (जन - उत्पन्न होना, प्रकट होना)।। 03।।

अनेजत् एकम् मनसो जवीयो,
न एनत् देवा आप्नुवन् पूर्वम् अर्षत्।
तत् धावतो अन्यान् अत्येति तिष्ठत्,
तस्मिन् अपो मातरिश्वा दधाति ।।4।।।

मन्त्रार्थ :- अनेजत् कम्पन रहित, निर्भय **एकम्** एक (एक ही, अद्वितीय) **मनसो** मन से **जवीयो** गतिशील, वेगवान् (है)। **एनत्** इस **पूर्वम्** पूर्व **अर्षत्** अर्षत्, अन्तर्यामी को **देवा** देवगण **न** नहीं **आप्नुवन्** पा सके। **तत्** वह **धावतो** दौड़ते हुए **अन्यान्** अन्यों का **अत्येति** अतिक्रमण कर **तिष्ठत्** स्थित है। **तस्मिन्** उसमें **अपो** अपः **मातरिश्वा** मातरिश्वा **दधाति** धारण करता है।

भावार्थ :- परमात्मा एक ही है। वह निर्भय है, कम्पन रहित है, मन से भी अधिक वेगवान् है। कोई कितना भी दौड़े-भागे, उसकी सीमा का ज्ञान नहीं कर सकता है। वह पूर्व ही सर्वत्र उपस्थित है, अतः कोई जहाँ तक भी विचार कर सकता है, वहाँ और उससे भी आगे परमात्मा वर्तमान होता है।

पदार्थ :- अनेजत् = कम्पन रहित, निर्भय {अन् = नहीं, एज् - चलना, कम्पन करना, प्रकाशित होना}। एकम् = एक। मनसो = मन से (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना)। जवीयो = अधिक वेगवान् (जु - जाना, शीघ्रता से चलना, भागना।)। न = नहीं। एतत् = यह। देवा = देवगण, तेजस्वी (देव्, दिव् = चमकना, तेजस्वी होना)। आप्नुवन् = पा सके (आप् - जाना, पाना, व्याप्त होना)। पूर्वम् = पहले ही। अर्षत् = अन्तर्यामी (ऋष् = जाना, जानना, पहुँचना, पाना, सूक्ष्मता से भीतर देखना, अन्तर्गमन करना)। तत् = वह। धावतो = दौड़ते हुए (धाव् - जाना, दौड़ना, भागना, स्वच्छ करना, स्वच्छ होना)। अन्यान् = औरों को (अन्य = कोई और,

इतर)। अत्येति = अतिक्रमण कर जाता है (अति = अधिक, अतिक्रम, इ - जाना)। तिष्ठत् = ठहरा (तिष्ठ् = ठहरना)। तस्मिन् = उसमें। अपो = जल को (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना)। मातरिश्वा = प्राण (मा -मापना, तौलना, तुलना करना, रिश् - हिंसा करना, ईश् - ऐश्वर्य होना, अधिकार होना, इष् - इच्छा करना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना)। दधाति = धारण करता है (धा-दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)।। 04 ।।

तत् एजति तत् न एजति,
तत् दूरे तत् उ अन्तिके।
तत् अन्तः अस्य सर्वस्य,
तत् उ सर्वस्य अस्य बाह्यतः ।।5 ।।।

मन्त्रार्थ :- तत् वह **एजति** चलता है, **तत्** वह **न** नहीं **एजति** चलता है। **तत्** वह **दूरे** दूर है, **तत्** वह **उ** ही **अन्तिके** निकट है। **तत्** वह **अस्य** इस **सर्वस्य** सबके **अन्तः** भीतर (है), **तत्** वही **अस्य** इस **सर्वस्य** सबके **बाह्यतः** बाहर (है)।

भावार्थ :- परमात्मा चेतन स्वरूप होने से सक्रिय गतिशील है, सम्पूर्ण सृष्टि उसी की शक्ति से संचालित है, अतः वह गतिशील है। वह सदा सर्वत्र व्याप्त है, उसे कहीं आने-जाने की आवश्यकता नहीं है, अतः वह नहीं चलता है, ऐसा कहते हैं। सर्वव्यापी होने से वह हमारे अति निकट है, परन्तु वह असीम, अनादि, अनन्त होने से पूर्णतः जानने, समझने, पाने की दृष्टि से बहुत दूर भी है। वह समर्पित भक्तों के लिए तो उनके निकट ही रहता है, परन्तु अन्य लोगों के लिए तो दूर ही है।

पदार्थ :- तत् = वह। एजति = प्रकाशित होता है (एज् - चलना, कम्पन करना, प्रकाशित होना, चमकना, झलकना)। तत - वह। न = नहीं। एजति = प्रकाशित होता है (एज् - चलना, कम्पन करना, प्रकाशित होना, चमकना, झलकना)। तत् - वह। दूरे = दूर। तत् - वह। उ = ही। अन्तिके = समीप। तत् - वह। अन्तः = बीच में। अस्य = इसका। सर्वस्य = सबके। तत् - वह। उ - ही। सर्वस्य - सबका। अस्य इसका। बाह्यतः = बाहर।।5 ।।

सूक्त - 2

यः तु सर्वाणि भूतानि,
आत्मनि एव अनुपश्यति।
सर्व भूतेषु च आत्मानम्,
ततः न वि चिकित्सति ।।6 ।।।

मन्त्रार्थ :- यः जो **तु** तो **सर्वाणि** सभी **भूतानि** भूतों (प्राणियों, तत्वों) को **आत्मनि** आत्मा में **एव** ही **अनुपश्यति** देखता है, **च** और **सर्व** सभी **भूतेषु** भूतों में **आत्मानम्** आत्मा को (**अनुपश्यति** देखता है), **ततः** उससे **न** नहीं **वि चिकित्सति** संशयग्रस्त होता है।

भावार्थ :- सबमें आत्मा तथा आत्मा में सबकुछ देखने की व्यापक दृष्टि ही अध्यात्म का मूल तत्व है। यही भावना सांसारिकता से ऊपर उठाकर हमें सभी भ्रम संशय से बचाकर वास्तविक शान्ति प्रदान कर सकती है।

पदार्थ :- यः = जो। तु = तो। सर्वाणि = सब। भूतानि = प्राणियों के (भू = होना)। आत्मनि = आत्मा में (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, अत् = सतत गमन करना, निरन्तर चलना)। एव = ही। अनु = पश्चात्, पीछे। पश्यति = देखता है (पश् = देखना)। सर्व = सभी भूतेषु = भूतो में (भू = होना)। च = और। आत्मानम् = आत्मा को (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, अत् = सतत गमन करना, निरन्तर चलना)। ततः = उससे। न = नहीं। विचिकित्सति = संशयग्रस्त (वि = विशेष, विपरीत। चिकित् - जानना)।।6 ।।

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि,
आत्म एव अभूत् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक,
एकत्वम् अनुपश्यतः ।।7 ।।।

मन्त्रार्थ :- विजानतः विशेष जानने वाले की **यस्मिन्** जिस (भावना) में **सर्वाणि** सभी **भूतानि** भूत **आत्म** आत्मा **एव** ही **अभूत्** हो गये हैं, **एकत्वम्** एकत्व को **अनुपश्यतः** देखने वाले को **तत्र** वहाँ **को** क्या **मोहः** मोह, **कः** क्या **शोक**

शोक।

भावार्थ :- सम्पूर्ण सृष्टि में एकमात्र आत्मतत्व ही व्याप्त है, जो इस भावना को अनुभव कर लेता है, उसे कोई मोह या शोक नहीं हो सकता है।

पदार्थ :- यस्मिन् = जिसमें। सर्वाणि = सब, सभी। भूतानि = प्राणियों को (भू = होना)। आत्म = आत्मा (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, अत् = सतत गमन करना, निरन्तर चलना)। एव = ही। अभूत् = हो गये हैं (अ + भूत्, भू = होना, प्राप्त होना}। वि = विशेष। जानतः = जानता है (ज्ञा-जान = जानना)। तत्र = वहाँ। को = कौन। मोहः = मोह, भूल, भ्रम (मुह - बुद्धिभ्रष्ट होना।)। को = कौन । शोकः = शोक या चिन्ता (शुच- दुःख मानना,शोक करना)। एकत्वम् = एकता (एक = एक)। अनुपश्यतः = देखने वाले को (अनु - पीछे, दृश्-पश् = देखना)।।7 ।।

स परि अगात् शुक्रम् अकायम् अव्रणम्,
अस्नाविरम् शुद्धम् अपाप-विद्धम्
कविः मनीषी परिभूः स्वयम्भूः,
याथातथ्यतो अर्थान् व्यदधात्
शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।8 ।।।

मन्त्रार्थ :- स वह **परि** सभी तरफ **शुक्रम्** विद्यमान है, पवित्र, **अकायम्** काया रहित, **अव्रणम्** घाव आदि से रहित, **अस्नाविरम्** स्नायु रहित, **शुद्धम्** शुद्ध, **अपाप-विद्धम्** पाप से अविद्ध, **कविः** कवि, **मनीषी** मनीषी, **परिभूः** परिभू, **स्वयम्भूः** स्वयंभू, **याथातथ्यतो** यथातथ्य **अर्थान्** अर्थो को **शाश्वतीभ्यः** शाश्वत **समाभ्यः** सम, विभाग (वर्ष) के लिए **व्यदधात्** धारण कर लिया।

भावार्थ :- परमात्मा के स्वरूप का सुन्दर वर्णन किया गया है।

पदार्थ :- स = वह। परि = सभी तरफ। अगात् = विद्यमान है (अग - जाना, जानना, पाना)। शुक्रम् = पवित्र को {शुक् -ˉ जाना, जानना, पाना, शुच् = शुद्ध होना, पवित्र होना} = विद्वान्, शुद्ध, पवित्र। अकायम् = काया रहित, अशरीरी (अक् - जाना, जानना पाना, कि-कय - जानना, समझना,)।

अव्रणम् = घाव रहित (व्रण - क्षत करना, घाव करना)। अस्नाविरम् = स्नायु रहित (स्नु - झरना, टपकना, बहना, स्ना= स्नान करना, शुद्ध होना, अस् = फेंकना, बिखेरना, उड़ाना)। शुद्धम् = पवित्र (शुध् - शुद्ध होना, पवित्र होना)। अपापविद्धम् = पाप से रहित {अ - नहीं, पाप् = पाप होना, पाप करना, विध्-विद्ध - विधान करना, वेधना, वेध करना)। कविः = ज्ञानी (कु - शब्द करना, कविता करना)। मनीषी = विचारक, विद्वान् (मन् - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। परिभूः = सब ओर होने वाला (परि - सब ओर, भू- होना)। स्वयम्भूः = स्वयम् होने वाले (स्वयम् - अपने आप, भू- होना)। याथातथ्यतो = ठीक - ठीक (यथा - जैसे, जिस प्रकार, तथा - वैसे, उसी प्रकार)। अर्थान् = अर्थों को (अर्थ - मांगना, चाहना)। व्यदथात् = धारण कर लिया। (वि - विशेष, दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। शाश्वतीभ्यः = शाश्वतों के लिए। समाभ्यः = सम, विभाग (सम्वत्सर, वर्ष) के लिए (सम = समान होना, सम विभाग करना, न घबराना, परिणाम् होना)।।8 ।।

सूक्त - 3

अन्धम् तमः प्र विशन्ति,
ये असम्भूतिम् उपासते।
ततो भूय इव ते तमो,
य उ सम्भूत्याम् रताः ।9 ।।।

मन्त्रार्थ :- ये जो **असम्भूतिम्** असम्भूति की **उपासते** उपासना करते हैं, **अन्धम्** अन्धकार **तमः** इच्छा, दुःख में **प्र विशन्ति** प्रविष्ट होते हैं। **य** जो **सम्भूत्याम्** सम्भूति में ही **रताः** रत रहते हैं, **ते** वे **ततो** उससे भी (घोर) **तमो** अन्धकार में (प्रविष्ट होते हैं)।

भावार्थ :- सम्भूति का अर्थ है सम्यक् रूप से होने का भाव तथा असम्भूति का अर्थ है सम्यक् रूप से न होना। जो सम्यक् रूप से नहीं हुआ, उसकी उपासना से अन्धकार ही मिल सकता है, यह तो स्वाभाविक है। जो सम्यक् रूप से हुआ है, उसमें रत रहने का परिणाम भी ऐसा ही होता है, यह

समझना महत्वपूर्ण है। सब कुछ सम्यक् रूप आदर्श स्वरूप में हो ही जाये, यह व्यावहारिक रूप से बहुधा सम्भव नहीं हो पाता है। अतः इस प्रकार आदर्श पूर्णतावादी दृष्टिकोण से प्रत्येक कार्य करने का प्रयास भी हमें समस्याग्रस्त बना सकता है, जीवन से सुख-शान्ति का प्रकाश छीन कर तनाव के अन्धकार में ले जाता है। जीवन में सन्तुलन आवश्यक है।

पदार्थ :- अन्धम् = घोर अन्धकार में (अन्ध - अन्धा होना, दिखाई न देना, आँखें मूंदना), तमः = इच्छा, दुःख (तम् - इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। प्रविशन्ति = प्रवेश करते हैं (प्र - प्रकृष्ट, विश् = प्रवेश करना, भीतर जाना)। ये = जो। असम्भूतिम् = सम्यक् रूप से उत्पन्न रहित (भू-होना)। उपासते = उपासना करना (उप - समीप, निकट, आस् - बैठना)। ततो = उससे। भूय = पुनः। इव = समान। ते = वे, तुम्हारा, तुम्हारे लिए । तमो = अन्धकार में (तमस् - अन्धकार, तम् - इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। य = जो। उ = ही। सम्भूत्याम् = सम्यक् रूप से उत्पन्न (सम् - सम्यक्, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। रताः = रत हैं, (रम - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना।।9।।

अन्यत् एव आहुः सम्भवात्,
अन्यत् आहुः असम्भवात्।
इति शुश्रुम धीराणाम्,
ये नः तत् वि चचक्षिरे।।10।।

मन्त्रार्थ :- सम्भवात् सम्भव अर्थात् सम्यक् रूप से होने से **अन्यत्** अन्य **एव** ही **आहुः** कहा गया है, **असम्भवात्** असम्भव अर्थात् सम्यक् रूप से न होने से **अन्यत्** अन्य **आहुः** कहा गया है। **इति** ऐसा **धीराणाम्** धीर जनों से **शुश्रुम** सुना है **ये** जो **नः** हमारे लिए **तत्** उसको **वि चचक्षिरे** देखते हैं।।10।।

भावार्थ :- सब कुछ सम्यक् रूप से हो, अथवा सब कुछ सम्यक् रूप से न हो, स्वाभाविक रूप से दोनो के परिणाम भिन्न होते हैं। अनुभवी लोग हमको बताते हैं कि क्या करना उचित होगा।।10।।

पदार्थ :- अन्यत् = अन्य, कोई और, इतर। एव = ही। आहुः = कहते हैं (ह्वे = पुकारना, शब्द करना)। सम्भवात् = सम्यक् रूप से होने से (सम् - सम्यक्, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। अन्यत् = अन्य, कोई और, इतर। आहुः। असम्भवात् = सम्यक् रूप से न होने से (अ - नहीं, सम् - सम्यक्, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। इति = यह। शुश्रुम = सुनते है (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना।)। धीराणाम् = धैर्य वाले (धी = धारण करना)। ये = जो। नः = हमको, हमारे लिए, हमारा। तत् = वह। वि = विशेष, विना, विलोम। च = और। चक्षिरे = उपदेश करते हैं (चक्षि - साफ बोलना, कहना, देखना)।।10।।

सम्भूतिम् च विनाशम् च,
यः तत् वेद उभयम् सह।
विनाशेन मृत्युम् तीर्त्वा,
सम्भूत्या अमृतम् अश्नुते।।11।।

मन्त्रार्थ - यः जो **सम्भूतिम्** सम्यक् रूप से उत्पन्न **च** और **विनाशम्** विनाश **उभयम्** दोनों को **सह** साथ-साथ **वेद** जानता है, **विनाशेन** विनाश से **मृत्युम्** मृत्यु को **तीर्त्वा** पार करके **सम्भूत्या** सम्भूति से **अमृतम्** अमृत को **अश्नुते** प्राप्त करता है।

भावार्थ :- सम्भूति अर्थात् सम्यक् रूप से जो होता है, वह तो श्रेष्ठ है ही, उसे तो जानना ही है। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि विनाश को भी जाना-समझा जाये। संसार गुण-दोषमय है, सभी पक्षों को जान कर ही जीवन सुचारु रूप से चल सकता है।

पदार्थ :- सम्भूतिम् = सम्यक् रूप से उत्पन्न, सम्यक् रूप से होना (सम् - सम्यक्, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। च = और। विनाशम् = विशेष नष्ट हो जाने को (नश - खो जाना, नष्ट होना, दिखाई नहीं देना।)। च - और। यः = जो। तत् = वह। वेद = जानता है (विद्- जानना)। उभयम् = दोनों को। सह = साथ। विनाशेन = विनाश से (नश - खो जाना, नष्ट होना, दिखाई नहीं देना)। मृत्युम् = मृत्यु को (मृ = मरना, देहत्याग करना)। तीर्त्वा = पार करके (तृ - तैरना, पार जाना, तीर - पूर्ण करना, समाप्त करना, पार लगाना)।

सम्भूत्या = सम्यक् रूप से उत्पन्न (सम् - सम्यक्, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। अमृतम् = अमृत को, न मरने वाला, अमर (अ - नहीं, मृ = मरना) । अश्नुते = प्राप्त करता है (अश् = भोजन करना, व्याप्त होना)।॥1॥

सूक्त - 4

अन्धम् तमः प्र विशन्ति,
ये अविद्याम् उपासते।
ततो भूय इव ते तमो,
य उ विद्यायाम् रताः ।॥2 ॥।

मन्त्रार्थ :- जो **अविद्याम्** अविद्या की **उपासते** उपासना करते हैं, **अन्धम्** अन्धकार **तमः** इच्छा, दुःख में **प्र विशन्ति** प्रविष्ट होते हैं। **ये** जो **विद्यायाम्** विद्या में **उ** ही **रताः** रत रहते हैं, **ते** वे **ततो** उससे **भूय** भी (घोर) **तमो** अन्धकार में (प्रविष्ट होते हैं)।

भावार्थ :- विद्या का अर्थ है जानने योग्य तथा अविद्या का अर्थ है न जानने योग्य। वास्तव में जानने योग्य तो परम चेतन सत्ता परमात्मा ही है। परम लक्ष्य वास्तविक विद्या तो उसे जानना ही है। उसकी उपासना से अन्धकार मिल सकता है, यह बात समझने योग्य है। संसार में जीवन निर्वाह के लिए अध्यात्म के साथ ही सांसारिक ज्ञान भी महत्वपूर्ण है। यदि संसार की पूर्णतः उपेक्षा कर दें तथा परमात्मा की उपासना में ही लीन हो जाना चाहें तो यह भी व्यावहारिक रूप से सम्भव नहीं हो सकेगा। अतः जीवन यापन कठिन हो जायेगा, अन्धकार अनुभव होने लगेगा। इसी तरह केवल सांसारिक लाभ-हानि में रत रहने से भी जीवन में वास्तविक शान्ति नहीं मिल सकती है। जीवन में सन्तुलन आवश्यक है।

पदार्थ :- अन्धम् तमः = घोर अन्धकार में (अन्ध - अन्धा होना, दिखाई न देना, आँखें मूंदना), तमः = इच्छा, दुःख (तम् - इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। प्रविशन्ति = प्रवेश करते हैं (प्र - प्रकृष्ट, विश् = प्रवेश करना, भीतर जाना)। ये = जो। विद्याम् = विद्या को

(विद - विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना)। उपासते = उपासना करते है (उप - समीप, निकट, आस् - बैठना)। ततो = उससे। भूय = पुनः। इव = समान। ते = वे, तुम्हारा, तुम्हारे लिए । तमो = अन्धकार में (तमस् - अन्धकार, तमु - इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। य = जो। उ (निपात) = ही। विद्यायाम् = विद्या को (विद - जीना, विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना)। रताः = लगे हैं, रत रहते हैं (रत् = प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना)।।॥2॥

अन्यत् एव आहुः विद्याया,
अन्यत् आहुः अविद्यायाः।
इति शुश्रुम धीराणाम्,
ये नः तत् वि चचक्षिरे।॥3॥

मन्त्रार्थ :- **विद्याया** विद्या का **अन्यत्** अन्य ही **आहुः** कहा गया है, **अविद्यायाः** अविद्या का **अन्यत्** अन्य **आहुः** कहा गया है। **इति** ऐसा **धीराणाम्** धीर जनों से **शुश्रुम** सुना है **ये** जो **नः** हमारे लिए **तत्** उसको **चक्षिरे** देखते हैं।

भावार्थ :- विद्या हो, अथवा अविद्या हो, स्वाभाविक रूप से दोनो के परिणाम भिन्न होते हैं। अनुभवी लोग हमको बताते हैं कि क्या करना उचित होगा।

पदार्थ :- अन्यत् = अन्य, कोई और, इतर। एव = ही। आहुः = कहते हैं (ह्वे = पुकारना, शब्द करना)। विद्याया = विद्या से (विद - जीना, विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना)। अन्यत् = अन्य, कोई और, इतर। आहुः = कहते हैं (ह्वे = पुकारना, शब्द करना)। अविद्यायाः = अविद्या से (अ - नहीं, विद - जीना, विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना)।। इति = यह। शुश्रुम = सुनते है (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना।)। धीराणाम् = धैर्य वाले (धी = धारण करना)। ये = जो। नः = हमको, हमारे लिए, हमारा। तत् = वह। वि = विशेष, चचक्षिरे = उपदेश करते हैं (चक्षि - साफ बोलना, कहना, देखना)।॥3॥

विद्याम् च अविद्याम् च,

यः तत् वेद उभयम् सह।

अविद्यया मृत्युम् तीर्त्वा,

विद्यया अमृतम् अश्नुते।।14।।

मन्त्रार्थ - यः जो **विद्याम्** विद्या **च** और **अविद्याम्** अविद्या **उभयम्** दोनों को **सह** साथ-साथ **वेद** जानता है, **अविद्यया** अविद्या से **मृत्युम्** मृत्यु को **तीर्त्वा** पार करके **विद्यया** विद्या से **अमृतम्** अमृत को **अश्नुते** प्राप्त करता है।

भावार्थ :- सम्भूति तथा असम्भूति अथवा विनाश के समान ही विद्या तथा अविद्या को भी एकसाथ जाना-समझा जाये, यह आवश्यक है। सभी पक्षों को जान कर ही जीवन सुचारु रूप से चल सकता है।

पदार्थ :- विद्याम् = विद्या को (विद - जीना, विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना) च = और। अविद्याम् = अविद्या को (विद - जीना, विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना)। च - और। यः = जो। तत् = वह। वेद = जानो। उभयम् = दोनों को। सह = साथ। अविद्यया = अविद्या से (विद - जीना, विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना)। मृत्युम् = मृत्यु को (मृ = मरना, देहत्याग करना)। तीर्त्वा = तैर कर, पार करके (तृ - तैरना, पार करना, तीर - पूर्ण करना, पार लगाना)। विद्यया = विद्या से (विद - जीना, विद्यमान होना, रहना)। अमृतम् = अमृत को (अ - नहीं, मृ = मरना)। अश्नुते = प्राप्त करता है (अश् = भोजन करना, व्याप्त होना)।।14।।

सूक्त - 5

वायुः अनिलम् अमृतम्,

अथ इदम् भस्मान्तम् शरीरम्।

ओ3म् क्रतो स्मर,

क्लिबे स्मर, कृतम् स्मर।।15।।

मन्त्रार्थ- वायुः गतिशील सृष्टिकर्ता (वा - गति करना, बहना, वे - बुनना, रचना करना, सृजन करना) **अनिलम्** प्राणवान्, प्राणदाता, स्पन्दनशील चेतन (अन् - प्राण होना, चेतन होना, स्पन्दन होना) **अमृतम्** अविनाशी है।

अथवा गति, सृजन तथा स्पन्दन ही अमृत - अविनाशी हैं। **इदम्** यह **शरीरम्** शरीर **अथ** अन्त में **भस्मान्तम्** भस्म (भोजन) से चेतन रहने वाला (है)। **क्रतो** हे कर्मशील। **ओ3म्** ओम् का **स्मर** स्मरण करो, **क्लिबे** कोमल **स्मर** स्मरण करो। **कृतम्** कृतित्व का **स्मर** स्मरण करो।

भावार्थ :- परमात्मा ओम् ऋत को उत्पन्न कर उसके अनुसार सृष्टि की गति तथा रचना का नियामक है। गति, स्पन्दन ओम् में ही निहित है। वही अमृत अविनाशी है। अब दूसरी ओर विचार करो, यह शरीर अन्त में भस्म हो जाने वाला है। जीवों का शरीर हो, प्रकृति का शरीर पर्वत आदि विराट सृष्टि हो, उसका अन्त होना ही है। अतः हे प्राणी ओम् का स्मरण करो, उस ओम् की कोमलता का स्मरण करो तथा अपनी कोमलता का स्मरण करो। परमात्मा की कोमलता प्राप्त करने के लिए उपासक में भी कोमलता की भावना होनी चाहिए। ओम् की कृति विराट सृष्टि का स्मरण करो तथा अपनी कृति का स्मरण करो। ओम् के स्वरूप का स्मरण रहे, उसकी करुणा, कोमलता, सामर्थ्य तथा अपने कार्य-स्वभाव, सामर्थ्य का स्मरण रहे, ओम् के तथा अपने कृतित्व का स्मरण रहे तो श्रेष्ठ विचार रहेंगे, जीवन उत्कृष्ट बना रहेगा, जीवन सफल होगा।

विशेष :- शरीर शब्द शृ - फटना, हिंसा करना, मारना तथा श्रि - सेवा करना, आश्रय करना धातुओं से निष्पन्न माना जाता है। इसका अर्थ है कि शरीर नाशवान् है, परन्तु यही आश्रय भी है, सेवा का साधन भी है। इसे अन्त में भस्म हो जाना है। भस् धातु का अर्थ खाना, चमकना, दोष लगाना, निन्दा करना है। शरीर की परिणति तो इसी रूप में होनी है। इसे रोग, दोष, निन्दा आदि खा जाते हैं। शरीर को बने रहने के लिए भी खाना चाहिए। जीवन का अन्त होने पर यह कुछ अन्य जीवों का भोजन बनता है या अग्नि, मिट्टी आदि प्रकृति के तत्वों का।

पदार्थ :- वायुः गतिशील सृष्टिकर्ता (वा - गति करना, बहना, वे - बुनना, रचना करना, सृजन करना) **अनिलम्** प्राणवान्, प्राणदाता, स्पन्दनशील चेतन (अन् - प्राण होना, चेतन होना, स्पन्दन होना), अमृतम् = अमृत को (मृ

= मरना)। अथ = अब। इदम् = यह। भस्मान्तम् = भस्म (भोजन) से चेतन रहने वाला, अन्त में भस्म हो जाने वाला (भस- खाना, चमकना, दोष लगाना, निन्दा करना, अन् - चेतन होना, जीवन होना, प्राण होना, समर्थ होना, जाना, जानना, पाना)। शरीरम् = शरीर (शृ - फटना, हिंसा करना, मारना, श्रि - सेवा करना, आश्रय करना)। ओ3म् = परमात्मा। क्रतो = कर्मशील (कृ = करना)। स्मर = स्मरण करो (स्मृ-स्मरण करना)। क्लिबे = कोमलता, सामर्थ्य (क्लीब - कोमल होना)। स्मर = स्मरण करो (स्मृ-स्मरण करना)। कृतम् = कृतित्व, किया हुआ (कृ = करना)। स्मर = स्मरण करो (स्मृ-स्मरण करना)।।5।।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्,
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोधि अस्मत् जुहुराणम् एनो,
भूयिष्ठाम् ते नम उक्तिम् विधेम।।6।।

मन्त्रार्थ- अग्ने हे अग्नि (परमात्मन्), **अस्मान्** हमें **सुपथा** अच्छे मार्ग पर **नय** ले चलो। **विश्वानि** सभी **देव** दिव्य शक्तियाँ, **वयुनानि** रचनाशील **विद्वान्** विद्वान् **एनो** यह **जुहुराणम्** आदान- प्रदान (करने का वैदिक गुण) सिखाने के लिए **अस्मत्** हमसे **युयोधि** बद्ध किया, अलग किया, युद्ध किया **ते** आपको **भूयिष्ठाम्** पुनः पुनः **नम** नमन **उक्तिम्** कथन **विधेम** (हम) करते हैं।।6।।

भावार्थ :- हमें ऐश्वर्य तथा सफलतायें प्राप्त करनी हैं तो श्रेष्ठमार्ग पर चलना होगा। अच्छे मार्ग पर चलते रहने के लिए दिव्य शक्तियों अर्थात् विशेष क्षमतावान् साधन - सम्पन्न लोगों तथा रचनाशील विद्वानों के सहयोग की आवश्यकता है। वेद से दूर होने पर हम इतने अज्ञानी और स्वार्थी होते हैं कि समाज में आदान- प्रदान करते रहने का सद्गुण सिखाने के लिए रचनाशील विद्वानोंको हमारी दुष्प्रवृत्तियों से युद्ध करने जैसा कठिन प्रयास करना पड़ता है। परमात्मा की कृपा से ऐसे धैर्यशील परोपकारी विद्वानों का सहयोग मिलता है, इसके लिए हम परमात्मा को पुनः पुनः नमन करते हैं।

पदार्थ :- अग्ने = हे अग्नि (अग् = गति करना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति होना, अग्रणी होना)। नय = ले जाओ (नी = ले जाना)। सुपथा = अच्छे मार्गों

पर (सु - अच्छा, सुन्दर, पथ - चलना)। राये = गतिशीलता में, शब्द अर्थात् वाणी में (रै = शब्द करना, रय् = गति करना, जाना)। अस्मान्= हमको। विश्वानि = सभी। देव = तेजस्वी (दिव्= तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना)। वयुनानि = रचनाशील (वे - बुनना, रचना करना, सृजन करना)। विद्वान् = जानने वाला, ज्ञानी (विद् = जानना)। युयोधि - बद्ध किया, अलग किया, युद्ध किया (युध् = युद्ध करना, यु - मिलाना, अलग करना, बाँधना, गूँथना)। अस्मत् = हमसे (अपादान, बहुवचन)। जुहुराणम् = आदान-प्रदान करने वाले {हू = आदान-प्रदान करना}। एनो= यह। भूयिष्ठाम् = पुनः पुनः। ते = तुम्हारा, तुम्हारे लिए। नम = नमन (नम् = नमन करना, सम्मान करना, शब्द करना)। उक्तिम् (उक् - उच्-वद् - कहना, समझना) = उक्ति को, कथन को, कही गयी बात को। विधेम = धारण करें (विध - विधान करना, धारण करना)।6।।

हिरण्मयेन पात्रेण,
सत्यस्य अपिहितम् मुखम्।
ओ3म् खम् ब्रह्म।।17।।

मन्त्रार्थ :- सत्यस्य सत्य का **मुखम्** मुख **हिरण्मयेन** स्वर्णिम **पात्रेण** पात्र से **अपिहितम्** ढका हुआ है।

भावार्थ :- सत्य के दर्शन में चमक- दमक ही बाधा है। जिनके पास धन- वैभव है, वे उसकी चमक में खोये हैं तथा साधनहीन विद्वान् सज्जनों के निर्मल हृदय नहीं देख पाते हैं। विद्वान् साधक भी साधनहीनता के कारण अपनी भावना तथा भावना तथा चिन्तन को समाज तक पहुँचा नहीं पाते हैं। समाज और सत्य ज्ञान के बीच वैभव की चमक बाधा बनी रहती है।

पदार्थ :- हिरण्मयेन = स्वर्णिम सुनहरे चमकीले (हिरण= शब्द करना)। पात्रेण = पात्र अर्थात् बरतन पर्दा या आवरण द्वारा (पा - रक्षा करना, पालन करना)। सत्यस्य = सत्य का। अपिहितम् = ढका हुआ (हि - जाना, पाना, प्रेरणा करना)। मुखम् = मुख, सत्य स्वरुप (मुख - मुख्य होना, जाना, खाना)। ओ3म् = परमात्मा। खम् = सर्वव्यापी। ब्रह्म = बड़ा, अधिक (बृह = वृद्धि होना,

अधिक होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, उद्यम करना, बोलना, शब्द करना)।17।।

यो असौ आदित्ये पुरुषः,

सो असौ अहम्, ओ3म् खम् ब्रह्म।।

ओ3म् खम् ब्रह्म।।18।।

मन्त्रार्थ :- यो जो **असौ** यह **आदित्ये** अविनाशी **पुरुषः** पुरुष (परम चेतन सत्ता परमात्मा है), **सो** वही **अहम्** मैं (जीव या सृष्टि का कोई अंश) **असौ** यह (हूँ)। **ओ3म्** ओम् **खम्** सर्वव्यापी **ब्रह्म** बड़ा (सबसे अधिक महान् है)।।18।।

भावार्थ :- यदि इस चमकदार आवरण को हटा सकें तो सत्य हमारे सामने होता हैं। इस सत्य का साक्षात्कार सम्भव है, स्वाभाविक है, अवश्य हो जायेगा, बस वैभव की चमक का आवरण हटाकर देखना होगा, इस आवरण से मुक्त होना होगा। हम देखते हैं कि जो आदित्य अर्थात् परम चेतन सत्ता परमात्मा है, वही मैं भी हूँ।आत्मा - परमात्मा, जीव- ब्रह्म की एकता का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है। यही सत्य है क्योंकि ओम् खम् ब्रह्म अर्थात् ओम् विराट सर्वव्यापक, सबसे बड़ा तथा महान् है। सब कुछ ओम् ही तो है और यही तो परम सत्य है।।18।।

विशेष :- आदित्य अर्थात् अदिति से उत्पन्न, अदिति से सम्बन्धित (अ-दिति, अ - नहीं, दो - खण्डन करना, अखण्डनीय अविनाशी तथा किसी का खण्डन न करने वाला), अथवा (आदि+ त्य) अर्थात् आदि तत्व के रूप में परम चेतन सत्ता परमात्मा।ओम् परमात्मा का मुख्य नाम है, यह अव्यय है। परमात्मा स्वयम् अव्यय है तो उसका नाम ओम् शब्द भी अव्यय है। ब्रह्म शब्द बृह् धातु से निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है वृद्धि होना, अधिक होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, उद्यम करना, बोलना, शब्द करना। परमात्मा सबसे बड़ा है, सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त होकर उससे भी अधिक है। वह हमें उठाता है, गिरने से बचाता है, उद्यम करना, उद्योग करना सिखाता है, उसके लिए प्रेरणा तथा सामर्थ्य प्रदान करता है। वह शब्द करने वाला है। विशेष रूप से वेद को उसकी वाणी, उसका ही शब्द माना जाता है। इसीलिए वेद को शब्द-ब्रह्म तथा

परमात्मा का शब्द स्वरूप ही कहा जाता है। वही हमको भी बोलना सिखाता है, वाणी की सामर्थ्य प्रदान करता है। वैदिक साहित्य में परमात्मा का मुख्य नाम ओम् है तथा उसके लिए ब्रह्म शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से किया गया है।

पदार्थ :- यो = जो। असौ = यह। आदित्ये = आदित्य में (आदित्य अर्थात् अदिति से उत्पन्न, अदिति से सम्बन्धित (अ-दिति, अ - नहीं, दो - खण्डन करना)। पुरुषः = पुरुष {पुर् = मुख्य होना, अग्रसर होना}। सो = वह। असौ = यह। अहम् = मैं। ओ3म् = परमात्मा। खम् = सर्वव्यापी। ब्रह्म = बड़ा, अधिक (बृह् = वृद्धि होना, अधिक होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, उद्यम करना, बोलना, शब्द करना)।।18।।

यो असौ आदित्ये पुरुषः,

सो असौ अहम्, ओ3म् खम् ब्रह्म।।

ॐ स्तुति

(यजुर्वेद, अध्याय 40)

सूक्त-1

ईशा वास्यम् इदम् सर्वम्,
यत् किम् च जगत्याम् जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा,
मा गृधः कस्य स्वित् धनम्॥1॥

ईश्वर-संव्याप्त सभी कुछ है,
जो कुछ गतिशील जगत् में है।
इसलिए त्यागमय भोग करें,
लालच न किसी के धन में है॥1॥

कुर्वन् एव इह कर्माणि
जिजीविषेत् शतम् समाः।
एवम् त्वयि न अन्यथा अतो अस्ति,
न कर्म लिप्यते नरे॥2॥

जीवन सक्रिय हो कर्मशील,
जीवन-आशा शतवर्ष रहे।
है यही मार्ग, अन्यथा नहीं,
नर में सब कर्म अलिप्त रहे॥2॥

असुर्या नाम ते लोका,
अन्धेन तमसावृताः।
तान् ते प्रेत्य अपि गच्छन्ति,
ये के च आत्महनो जनाः॥3॥

लोक हीन ऐश्वर्य से,
अन्धकारमय अन्ध।
आत्महनन जो कर रहे,
उनको पाते बन्ध॥3॥

अनेजत् एकम् मनसो जवीयो,
न एनत् देवा आप्नुवन् पूर्वम् अर्शत्।
तत् धावतो अन्यान् अति एति तिष्ठत्,
तस्मिन् अपो मातरिश्वा दधाति॥4॥

गतिहीन वही, मन की गतिमय,
इसको तो देव भी पा न सके।
स्थिर रहकर सब से आगे,
सब वेगवान को कर पीछे,
उसमें ही अपः मातरिश्वा॥4॥

सूक्त-2

तत् एजति तत् न एजति,
तत् दूरे तत् उ अन्तिके।
तत् अन्तः अस्य सर्वस्य,
तत् उ सर्वस्य अस्य बाह्यतः ॥5॥

वह सचल रहे, है अचल वही,
वह दूर रहे, है निकट वही।
सबके भीतर वह 'स्वामी' है,
सबके बाहर भी सदा वही॥5॥

यः तु सर्वाणि भूतानि,
आत्मन् एव अनुपश्यति।
सर्व भूतेषु च आत्मानम्,
ततो न वि चिकित्सति ॥6॥

जो प्राणी सभी प्राणियों को
देखे बस आत्म तत्व में ही।
जो देखे सबमें आत्मा को,
उसको भ्रम-संशय कभी नहीं॥6॥

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि,
आत्म एव अभूत् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक,
एकत्वम् अनुपश्यतः ॥7॥

जिसमें सब प्राणी आत्मरूप
हो गये, इसे जो जन जाने।
उसको क्या मोह-शोक होगा?
एकत्व भाव सबमें माने॥7॥

स परि अगात् शुक्रम्, अकायम् अव्रणम्,
अस्नाविरम् शुद्धम् अपाप-विद्धम्।
कविः मनीषी परिभूः स्वयम्भूः,
याथातथ्यतो अर्थान् व्यदधात्
शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥8॥

वह शुक्र, देह से हीन अव्रण,
अस्नाविर, शुद्ध, अपापविद्ध।
वह कवि है, वही मनीषी है,
वह परिभू, वही स्वयम्भू है,
शाश्वत सब अर्थ किये धारण॥8॥

सूक्त-3

अन्धम् तमः प्र विशन्ति,
ये असम्भूतिम् उपासते।
ततो भूय इव ते तमो,
य उ सम्भूत्याम् रताः ॥9॥

असम्भूति वासी गये,
घोर तमस् में लोग।
उसी तरह वे भी गये,
जो सम्भूति प्रयोग॥9॥

अन्यत् एव आहुः सम्भवात्,
अन्यत् आहुः असम्भवात्।
इति शुश्रुम् धीराणाम्,
ये नः तत् वि चचक्षिरे॥10॥

अन्य लाभ सम्भूति का,
असम्भूति का अन्य।
धीर जनों से यह सुना,
जो सद् दृष्टि अनन्य॥10॥

सम्भूतिम् च विनाशम् च,
यः तत् वेद उभयम् सह।
विनाशेन मृत्युम् तीर्त्वा,
सम्भूत्या अमृतम् अश्नुते॥11॥

जो सम्भूति-विनाश को,
जान रहे हैं साथ।
वे विनाश से मृत्यु तर,
अमृत लाये हाथ॥11॥

सूक्त-4

अन्धम् तमः प्र विशन्ति,
ये अविद्याम् उपासते।
ततो भूय इव ते तमो,
य उ विद्यायाम् रताः॥12॥

करे अविद्यावास जो,
पड़े तमस् में घोर।
जो विद्या में रत रहे,
वे भी हैं उस ओर॥12॥

अन्यत् एव आहुः विद्याया,
अन्यत् आहुः अविद्यायाः।
इति शुश्रुम धीराणाम्,
ये नः तत् वि चचक्षिरे ॥13॥

विद्या का फल अन्य कुछ,
अन्य अविद्या देय।
धीर पुरुष जो जानते,
उनसे सुनते श्रेय॥13॥

विद्याम् च अविद्याम् च,
यः तत् वेद उभयम् सह।
अविद्यया मृत्युम् तीर्त्वा,
विद्यया अमृतम् अश्नुते ॥14॥

विद्या को और अविद्या भी,
जो जन जानें साथ।
पार मृत्यु से हो गये,
अमृत आया हाथ॥14॥

सूक्त-5

वायुः अनिलम् अमृतम्,
अथ इदम् भस्मान्तम् शरीरम्,
ओ3म् क्रतो स्मर,
क्लिबे स्मर, कृतम् स्मर ॥15॥

वायु अनिल वह अमृत है,
यह भस्मान्त शरीर।
ओ3म् जपो, कृत ध्यान कर,
प्राणी धरकर धीर॥15॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्,
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोधि अस्मत् जुहुराणम् एनो
भूयिष्ठाम् ते नम उक्तिम् विधेम ॥16॥

प्रभो! अग्नि! हमको सुपथ पर चलाओ,
सभी देव विद्वान् सत्कर्म सर्जक।
करें दूर हमसे कुटिलता बुराई,
नमन भूयशः आपके हेतु धारें॥16॥

हिरण्यमयेन पात्रेण,
सत्यस्य अपिहितम् मुखम्॥
ओ3म् खम् ब्रह्म॥17॥

है हिरण्यमय पात्र आवरण,
ढके सत्य का मुख स्वरूप है॥
ओ3म् ब्रह्म आकाशवत्॥17॥

यो असौ आदित्ये पुरुषः,
सो असौ अहम्, ओ3म् खम् ब्रह्म॥
ओ3म् खम् ब्रह्म॥18॥

जो आदित्य पुरुष वही,
मैं भी हूँ, पहचान॥
ओ3म् ब्रह्म आकाशवत्॥
ओ3म् ब्रह्म आकाशवत्॥18॥

ॐ

संस्कृत प्रशिक्षण पाठ्यक्रम

1. प्राथमिक संस्कृत पाठ्यक्रम :- मूल तथा सार्व नामिक (कारक) विभक्तियाँ तथा मूल आख्यात (क्रिया) विभक्तियाँ सीखकर संस्कृत भाषा को प्रयोग करना सम्भव हो जाता है। वर्तमान काल की आख्यातिक विभक्तियों से ही तीनों कालों भूत, वर्तमान, भविष्यत् काल की क्रियाएँ सरलता से बन सकती हैं। तीन कालों के अतिरिक्त हेतु-हेतुमद् (लृङ्) तथा आज्ञा, प्रार्थना, आशीर्वाद, निर्देश आदि के लिए प्रविधि (लोट्) आख्यातिक या क्रिया विभक्ति आवश्यक हैं। इतना ज्ञान प्राथमिक स्तर पर करा देना चाहिए। एक या दो सप्ताह के पाठ्यक्रमों में इसका प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

2. व्यावहारिक संस्कृत पाठ्यक्रम :- प्राथमिक स्तर पूर्ण कर लेने पर दैनिक जीवन तथा लोक व्यवहार के लिए आवश्यक संस्कृत व्याकरण का ज्ञान हो जाता है। व्यक्ति की योग्यता-क्षमता तथा प्रयास के अनुसार एक मास से तीन मास के प्रशिक्षण में व्यावहारिक संस्कृत का पर्याप्त अभ्यास हो जाता है। इससे दैनिक जीवन में लोक व्यवहार के लिए संस्कृत भाषा को अपनाया जा सकता है।

3. शिष्ट संस्कृत पाठ्यक्रम :- इसके पश्चात् मध्यम स्तरीय पाठ्यक्रम शिक्षण माध्यम सम्बन्धी आवश्यकताओं, कार्यालय सम्बन्धी कार्य, पत्र तथा पत्रिकाओं में लेखन-सम्पादन, सभा, संवाद तथा सार्वजनिक शिष्ट व्यवहार का है। इससे व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी अनिवार्य संस्कृत भाषा का अभ्यास पूर्ण हो जाता है। इसमें अष्टादश आख्यातिक या क्रिया विभक्ति प्रणाली से आधुनिक आवश्यकता के अनुसार सभी उपयोगी क्रिया रूपों का परिचय करा दिया जाता है। इस स्तर को एक वर्ष में पूर्ण किया जा सकता है।

4. रचनात्मक संस्कृत पाठ्यक्रम :- इसके पश्चात् रचनात्मक तथा साहित्यिक (साहित्यिक) संस्कृत का स्तर है। इसमें साहित्य का स्वाध्याय, काव्य विधाएँ काव्यगुण, रस, छन्द, अलङ्कार, साहित्य सृजन, लेखन, सम्पादन,

काव्य रचना तथा भाषण-सम्भाषण का अभ्यास प्रमुख है। इस स्तर को दो वर्ष में पूर्ण किया जा सकता है।

5. उच्च संस्कृत पाठ्यक्रम :- उच्च शिक्षा के स्तर पर शास्त्रीय संस्कृत व्याकरण का परिचयात्मक अध्ययन सम्मिलित कर लेना चाहिये। जिनकी रुचि हो, वे परम्परागत पञ्चपाठी संस्कृत व्याकरण का गम्भीर अध्ययन तथा शोधकार्य कर सकते हैं। इसके लिए कोई समय सीमा नहीं हो सकती है। संस्कृत साहित्य तथा व्याकरण का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। उसमें जितना अध्ययन तथा शोध कार्य किया जा सके, सराहनीय ही है। किसी भी विषय में विद्वता की कोई सीमा नहीं होती है और संस्कृत व्याकरण भी इसका अपवाद नहीं है।

सामान्य सरल संस्कृत प्रशिक्षण

1. सरल संस्कृत व्याकरण प्रशिक्षण पद्धति व्याकरण-सम्मत, वैज्ञानिक तथा अनुभव द्वारा प्रमाणित है।

2. संस्कृत शिक्षक पाठ्यक्रम (एक वर्ष) में आवश्यक संस्कृत व्याकरण, पढ़ना, लिखना, बोलना, अध्यापन तथा संस्कृत केन्द्र की स्थापना एवम् सञ्चालन का व्यावहारिक प्रशिक्षण भी सम्मिलित है।

3. सुयोग्य तथा सेवाभावी छात्रों के लिए छात्रवृत्ति भी सम्भव है। सफल छात्रों को इस संस्थान से सम्बद्धता लेकर संस्कृत केन्द्र स्थापित करने के लिए समुचित मार्गदर्शन प्रदान किया जायेगा।

4. प्रशिक्षण का उद्देश्य संस्कृत भाषा के माध्यम से उच्च जीवन मूल्यों तथा सामाजिक सद्भाव का प्रचार एवम् संस्कृत भाषा में संरक्षित महान् ज्ञान-विज्ञान का संरक्षण और प्रचार करना है।

5. संस्कृत भाषा में संरक्षित विद्याओं वेद, ध्यान-योग, आयुर्वेद-स्वास्थ्य रक्षा, वैदिक पञ्चांग, वैदिक संस्कार, वैदिक इतिहास, लेखन-सम्पादन एवम् काव्य-रचना का सामान्य ज्ञान भी कराया जाता है।

ॐ

वैदिक विज्ञान

1. वेद :- विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ, सनातन धर्म संस्कृति का मूल आधार, बीस हजार से अधिक मन्त्रों का संग्रह, चार भाग या संहिताएँ ऋग्वेद, सामवेद, अथर्व वेद, यजुर्वेद। चारों संहिताओं का संयुक्त रूप ही वेद या विश्व वेद है।

2. वेदांग :- वेद का अंग (वेद + अंग), संस्कृत भाषा विज्ञान तथा व्याकरण। वर्ण उच्चारण शिक्षा, निघण्टु या शब्द कोश, व्याकरण या पदनिर्माण, निरुक्त या शब्द निर्माण तथा शब्दार्थ ज्ञान, छन्द विज्ञान ऋषि, देवता, स्वर तथा मन्त्र पाठ विधियाँ सन्धि पाठ, छन्द पाठ, पद पाठ, निरुक्त पाठ, क्रम पाठ, चर्चा पाठ एवम् विभिन्न विकृति पाठ।

3. अनुवेद :- ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, विकास तथा मानव इतिहास। ब्राह्मण ग्रन्थ आरण्यक, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, रघुवंश, राजतरंगिणी, नीति, स्मृति, प्रातिशाख्य आदि प्राचीन ग्रन्थ तथा भगवान् वेद व्यास की प्रेरणा से संकलित पञ्च लक्षण महापुराण। पुराण के पञ्च लक्षण 1. सर्ग (सृष्टि), 2. प्रतिसर्ग (प्रलय), 3. मन्वन्तर (काल विभाजन), 4. वंश (राजाओं तथा ऋषियों का वंश परिचय), 5. वंशानुचरित (प्रमुख व्यक्तियों के कार्य)।

4. उपांग : वेद का उप अंग (उप+अंग), वेद के निकट, पूर्णतः वेद पर आधारित। अध्ययन या उपयोग की प्रामाणिकता वेद पर निर्भर। दर्शन, कर्मकाण्ड, साधना तथा वैदिक जीवन एवम् समाज।

5. उपवेद :- वेद के आधार पर विकसित सामाजिक विषय। आयुर्वेद, अर्थवेद (शिल्प, यन्त्र, वित्त), धनुर्वेद (सैन्य विज्ञान, शासन-प्रशासन तथा सामाजिक व्यवस्था), गन्धर्व वेद (ललित कला), ज्योतिर्वेद (भूगोल, खगोल) आदि।

ॐ

वैदिक विज्ञान सन्दर्भ ग्रन्थ

1. निरुक्त वेद भाष्य :- प्रत्येक पद या शब्द का उपसर्ग, धातु, प्रत्यय, सन्धि, समास स्पष्ट करते हुए सम्पूर्ण वेद का निष्पक्ष अनुवाद। इसके बाद भावार्थ या व्याख्या दे सकते हैं। इस प्रकार का वेदभाष्य हम प्रकाशति कर चुके हैं। विस्तृत सूची दिया जाना भी आवश्यक है।

2. वैदिक अनुक्रमणी :- सभी वेद मन्त्रों की अकारादि क्रम से सूची श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने स्वाध्याय मण्डल, पारडी-बलसाड़, गुजरात से प्रकाशित की थी। मन्त्रों के साथ ही ऋषि, देवता, छन्द, स्वर की भी अनुक्रमणी आवश्यक है।

3. वैदिक शब्द कोश :- सभी वैदिक शब्दों का अकारादि क्रम से निरुक्त के अनुसार अर्थ सहित सम्पूर्ण वैदिक शब्दकोश। हमारा वैदिक शब्दकोश प्रकाशित हो चुका है।

4. वैदिक व्याकरण :- वैदिक भाषा लौकिक संस्कृत से अधिक प्राचीन तथा श्रेष्ठ है। उसका व्याकरण प्रकाशित नहीं हुआ है। संस्कृत व्याकरण ग्रन्थों में बहुलम् छन्दसि, इति वेदे आदि टिप्पणियाँ देकर वैदिक व्याकरण का संस्कृत से विशिष्ट होना स्वीकार किया जाता है। वैदिक भाषा व्याकरण का प्रकाशन आवश्यक है।

5. वैदिक वाङ्मय :- वैदिक विज्ञान के प्रामाणिक ग्रन्थों का क्रमबद्ध एकत्र प्रकाशन। विशेष रूप से वैदिक महापुराण के तर्क सम्मत सम्पादन तथा प्रकाशन की आवश्यकता है।

विशेष :- इन सभी ग्रन्थों के सम्पादन तथा प्रकाशन की हमारी कामना आपके आर्थिक तथा समयदान के सहयोग से सम्भव हो सकती है। उपलब्ध साधनों के अनुसार हमारा प्रयास चलता रहेगा।

ॐ

प्रशिक्षण योजना

1. वेदपाठ एवम् वेदार्थ :- वेद पाठ सत्संग के साथ ही धात्वादि कोश तथा वैदिक शब्दकोश की सहायता से प्रामाणिक वेदार्थ करने का प्रशिक्षण भी प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए अध्ययन तथा अभ्यास करना महत्वपूर्ण है।

2. मन्त्र साधना :- वेद मन्त्रों में दिव्य शक्तियाँ समाहित हैं। मन्त्र शक्ति जागरण के लिए मार्गदर्शक से व्यक्तिगत सम्पर्क तथा नियमित मार्ग दर्शन की आवश्यकता होती है।

3. सरल संस्कृत :- वैदिक भाषा संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषा है। इसके लिए अनिवार्य व्याकरण एक दिन में सीखी जा सकती है। शब्दों या धातुओं के रूप या कठिन सूत्र रटने की कोई आवश्यकता नहीं है। अपने प्रयास के अनुसार एक सप्ताह से एक मास में संस्कृत पढ़ना, लिखना, बोलना, समझना सीखा जा सकता है। सरल संस्कृत प्रशिक्षण चलते रहते हैं।

विशेष :- एक या दो सप्ताह के पाठ्यक्रमों में सरल संस्कृत व्याकरण प्रशिक्षण की व्यवस्था प्रौढ़ शिक्षित लोगों के लिए है। उनसे हिन्दी भाषा तथा व्याकरण के परिचय की अपेक्षा की जाती है। आधारभूत भाषा व्याकरण सम्बन्धी जानकारी न होने पर पहले उसकी सामान्य जानकारी देना आवश्यक होता है। इसमें कुछ समय लगना स्वाभाविक है। व्यावहारिक दृष्टि से प्राथमिक संस्कृत पाठ्यक्रम के लिए न्यूनतम एक मास का प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाना उचित है।

4. वैदिक इतिहास तथा युगाब्द :- वैदिक इतिहास का अध्ययन तथा प्रचार-प्रसार हमारा प्रमुख कर्तव्य है। युगाब्द विश्व का प्राचीनतम ऐतिहासिक तथा प्रामाणिक सम्वत् है। अतः हमें युगाब्द का प्रयोग अनिवार्य रूप से करना चाहिये। गौतम बुद्ध से पूर्व का भारतीय इतिहास सत् युग, त्रेतायुग, द्वापर युग तथा कलियुग में विभाजित है। चारों युगों का इतिहास हम क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत कर चुके हैं तथा प्रकाशित भी हैं।

5. मानव विकास :- वेद, विश्वधर्म तथा सांस्कृतिक मानव विकास सिद्धान्त को अपना कर सभी का उदय अर्थात् सभी व्यक्तियों तथा समुदायों का विकास हो सकता है। अवसर मिले तो विकास तो व्यक्ति स्वयम् कर सकता है, हमारा प्रयास केवल मार्ग की बाधाएँ दूर करना है। सामाजिक परिस्थिति, स्वास्थ्य तथा समुचित शिक्षा-प्रशिक्षण का अवसर प्रदान कर सभी व्यक्तियों को विकास करने में सक्षम बना सकते हैं। विकास की दिशा तथा क्षेत्र व्यक्ति स्वयम् चुनता है तथा रुचि तथा प्रयास के अनुसार अपना विकास कर सकता है। इसके लिए परस्पर सहयोग करना चाहिए। लेखन, सम्पादन, प्रकाशन क्षेत्र में प्रशिक्षण के साथ ही संस्था के प्रकाशन से जुड़कर व्यावहारिक प्रशिक्षण तथा अनुभव प्राप्त कर सकते हैं।

ॐ

स्वामी शरण कृत साहित्य

मो. 9839105629, 8687849004

1. ऋग्वेद भाष्य :- ऋग्वेद भाष्य के इस सार-संक्षेप संस्करण में सन्धियों से मुक्त सरल पाठ के साथ ही मन्त्रार्थ, भावार्थ तथा पदार्थ भी प्रस्तुत किया गया है। मन्त्रों के सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का यह इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत, पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है। जन सामान्य तथा शोधकर्ताओं-अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी संस्करण।

(बृहद् आकार) **रु. 2000.00**

2. सामवेद भाष्य :- सामवेद भाष्य के इस सम्पूर्ण संस्करण में सन्धियों से मुक्त सरल पाठ के साथ ही मन्त्रार्थ, भावार्थ तथा पदार्थ भी प्रस्तुत किया गया है। मन्त्रों के सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का यह इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द

अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है। अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी संस्करण। (बृहद् आकार) **रु. 2000.00**

3. अथर्ववेद भाष्य :- अथर्ववेद भाष्य के इस सार-संक्षेप संस्करण में सन्धियों से मुक्त सरल पाठ के साथ ही मन्त्रार्थ, भावार्थ तथा पदार्थ भी प्रस्तुत किया गया है। मन्त्रों के सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का यह इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है। अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी संस्करण। (बृहद् आकार) **रु. 2000.00**

4. यजुर्वेद भाष्य :- यजुर्वेद भाष्य के इस सम्पूर्ण संस्करण में सन्धियों से मुक्त सरल पाठ के साथ ही मन्त्रार्थ, भावार्थ तथा पदार्थ भी प्रस्तुत किया गया है। मन्त्रों के सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का यह इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है। अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी संस्करण। (बृहद् आकार) **रु. 2000.00**

5. वेदायन भाष्य :- चारो वेदों से चुने हुए प्रमुख वेद सूक्तों का मन्त्रार्थ, पदार्थ, भावार्थ तथा सरस गेय पद्यानुवाद भी दिया गया है। सन्धियों-संयुक्ताक्षरों से मुक्त सरल सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत, पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है। जन सामान्य तथा शोधकर्ताओं-अध्येताओं के लिए उपयोगी संस्करण। **रु. 500.00**

6. वेदायन प्रवचन :- चारो वेदों से चुने हुए प्रमुख वेद सूक्तों का मन्त्रार्थ, पदार्थ, भावार्थ तथा सरस गेय पद्यानुवाद भी दिया गया है। इसके साथ ही इन मन्त्रों पर विस्तृत प्रवचन भी इस पुस्तक में संकलित हैं। सन्धियों-संयुक्ताक्षरों से मुक्त सरल सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत, पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है। सभी के लिए उपयोगी संस्करण। **रु. 500.00**

7. वेदायन (सरल पाठ, काव्यानुवाद, भावार्थ सहित):- चारो वेदों से चुने हुए प्रमुख वेदसूक्तों का सन्धियों से मुक्त सरल पाठ, काव्यानुवाद एवम् भावार्थ। **रु. 100.00**

8. वेदायन (सरल पाठ, काव्यानुवाद) :- चारो वेदों से चुने हुए प्रमुख वेदसूक्तों का सन्धियों से मुक्त सरल पाठ, काव्यानुवाद एवम् भावार्थ। वेदपाठ तथा उपासना के लिए। **रु. 100.00**

9. वेद सूक्तायन :- चारो वेदों से चुने हुए 15 प्रमुख वेदसूक्तों का सन्धियों से मुक्त सरल पाठ (छन्द पाठ), मन्त्रार्थ, विशेष भावार्थ-व्याख्या, व्याकरण-सम्मत पदार्थ (शब्दार्थ) सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। **रु. 100.00**

10. यजुर्वेद एकादशी :- यजुर्वेद के अन्तिम 11 अध्यायों का मन्त्रार्थ, पदार्थ, भावार्थ दिया गया है। सन्धियों-संयुक्ताक्षरों से मुक्त सरल सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत, पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है। जन सामान्य तथा शोधकर्ताओं-अध्येताओं के लिए उपयोगी संस्करण। **रु. 500.00**

11. चतुर्वेद सरल पाठ :- प्रथम बार प्रस्तुत सन्धियों से मुक्त चारों वेदों का सरल पाठ जन साधारण के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। (बृहद् आकार) **रु. 2500.00**

12. ऋग्वेद सरल पाठ :- ऋग्वेद का सम्पूर्ण सरल पाठ प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है। (बृहद आकार) **रु. 900.00**

13. सामवेद सरल पाठ :- सामवेद का सम्पूर्ण सरल पाठ

प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है। **रु. 500.00**

14. अथर्ववेद सरल पाठ :- अथर्ववेद का सम्पूर्ण सरल पाठ प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है।

(बृहद आकार) **रु. 700.00**

15. यजुर्वेद सरल पाठ :- यजुर्वेद का सम्पूर्ण सरल पाठ प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है। **रु. 700.00**

16. वैदिक धात्वादि कोश :- पाणिनि तथा काशकृत्स्न प्रोक्त धातुपाठों को समाहित कर सम्पूर्ण धातुकोश तैयार किया गया है। उपसर्ग, अव्यय, संख्या, सर्वनाम शब्द भी दिये गये हैं। इसकी सहायता से वेद सहित सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य का अर्थ किया जा सकता है। अत्यन्त उपयोगी संस्करण। **रु. 500.00**

17. वैदिक शब्दकोश :- वैदिक पदों (शब्दों) का धातुज, व्याकरण-सम्मत प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ। इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत वैदिक शब्दकोश। (वृहद आकार) **रु. 900.00**

18. वैदिक शब्दकोश (लघु संस्करण) :- वैदिक पदों (शब्दों) का धातुज, व्याकरण-सम्मत प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ। इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत वैदिक शब्दकोश। **रु. 200.00**

19. सरल संस्कृत व्याकरण :- व्याकरण के मूल तत्वों पर आधारित इस पद्धति से शब्द रूप, धातु रूप, पाणिनीय सूत्र रटे बिना एक मास में संस्कृत पढ़ना, लिखना, बोलना सीख सकते हैं। दशकों के अनुभव के बाद प्रस्तुत उपयोगी चमत्कारिक व्याकरण प्रणाली। **रु. 95.00**

20. वैदिक इतिहास :- ब्रह्मा व मनु से आरम्भ कर बुद्ध

तक का सम्पूर्ण क्रमबद्ध इतिहास एक पुस्तक में सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया है। सूर्यवंश की 128 पीढ़ियों का इतिहास प्रथम बार प्रस्तुत किया है। सूर्यवंश, चन्द्रवंश की शाखाओं सहित मनु से भोज तक सम्पूर्ण वंशावली भी दी गयी है। **रु. 200.00**

21. ओम् साधना :- ओम् साधना, वैदिक संस्कृति, वैदिक आध्यात्मिक चिकित्सा, वैदिक योग साधना। **रु. 200.00**

22. चिन्तन प्रवाह :- वैदिक संस्कृति तथा जीवन दर्शन सम्बन्धी चिन्तन। **रु. 500.00**

23. वैदिक विज्ञान :- वैदिक संस्कृति, आध्यात्मिक चिकित्सा, वैदिक योग साधना। **रु. 50.00**

24. युगबोध :- प्रबन्ध काव्य। **रु. 300.00**

25. चेतना :- काव्य संकलन। **रु. 100.00**

26. नवांकुर :- काव्य संकलन। **रु. 20.00**

❖❖ ❖ ❖❖

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्, ओम् खम् ब्रह्म॥

आगामी प्रकाशन योजना

1. वैदिक व्याकरण : पंचपाठी व्याकरण का समयानुकूल प्रस्तुतीकरण। अष्टाध्यायी सूत्रों का अनुवृत्ति सहित प्रस्तुतीकरण, जिससे प्रत्येक सूत्र स्वयम् ही सम्पूर्ण अर्थ स्पष्ट कर सके। व्यापक प्रभाव वाले सूत्रों को महत्व देते हुए, अपवादों को स्पष्ट करना तथा उनकी सीमाओं का स्पष्टीकरण करना। पंचपाठी की अन्य पुस्तकों का भी इसी भाँति सम्पादन तथा उणादि कोष आदि का अकारादि क्रम से प्रस्तुतीकरण।

2. वैदिक महापुराण : पुराण विद्या का व्यापक शोधपरक अध्ययन कर पंच-लक्षणों के आधार पर सम्पादन।

3. वैदिक जीवन : वैदिक संस्कृति तथा जीवन दर्शन के साथ ही वैदिक साहित्य का सम्पूर्ण परिचय।

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्, ओम् खम् ब्रह्म॥

❖❖ ❖ ❖❖

ॐ मन्त्र

(यजुर्वेद अन्तिम मन्त्र)

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः,

सो असौ अहम्, ओ३म् खम् ब्रह्म ॥

ओ३म् खम् ब्रह्म ॥

जो आदित्य पुरुष वही,

मैं भी हूँ, पहचान ॥

ओम् ब्रह्म व्यापक परम ॥

ओम् ब्रह्म व्यापक परम ॥

ॐ